श्री काशी खण्ड

अध्याय १४ से १८

...म व चन्द्र लोक से सप्तर्षि लोक



लेखक

वैकुण्ठनाथ उपाध्याय

अथ लिङ्गाष्टक ।

ब्रह्ममुरारिसुरार्चितलिङ्गं निर्मलभासितशोभितलिङ्गम् ।
जन्मजदुःखविनाशनलिङ्गं तत्प्रणमामि सदा शिवलिङ्गम् ॥१॥

देवमुनिप्रवरार्चितलिङ्गं कामदहं करुणाकरलिङ्गम् ।
रावणदर्पविनाशनलिङ्गं तत्प्रणमामि सदा शिवलिङ्गम् ॥२॥

सर्वसुगन्धिसुलेपितलिङ्गं बुद्धिविवर्द्धनकारणलिङ्गम् ।
सिद्धसुरासुरवन्दितलिङ्गं तत्प्रणमामि सदा शिवलिङ्गम् ॥३॥

कनकमहामणिभूषितलिङ्गं फणिपतिवेष्टितशोभितलिङ्गम् ।
दक्षसुयज्ञविनाशनलिङ्गं तत्प्रणमामि सदा शिवलिङ्गम् ॥४॥

कुङ्कुमचन्दनलेपितलिङ्गं पङ्कजहारसुशोभितलिङ्गम् ।
सञ्चित पापविनाशनलिङ्गं तत्प्रणमामि सदा शिवलिङ्गम् ॥५॥

देवगणार्चितसेवितलिङ्गं भावैर्भक्तिभिरेव च लिङ्गम् ।
दिनकरकोटिप्रभाकरलिङ्गं तत्प्रणमामि सदा शिवलिङ्गम् ॥

अष्टदलोपरिवेष्टितलिङ्गं सर्वसमुद्भवकारणलिङ्गम् ।
अष्टदरिद्रविनाशनलिङ्गं तत्प्रणमामि सदा शिवलिङ्गम् ॥

सुरगुरुसुरवरपूजितलिङ्गं सुरवनपुष्पसदर्चितलिङ्गम् ।
परात्परं परमात्मकलिङ्गम् तत्प्रणमामि सदा शिवलिङ्गम् ।

लिङ्गाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ।

इति श्रीलिङ्गाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

श्री काशी खण्ड

(अध्याय १४ से १८)

ईशान व चन्द्रलोक से सप्तर्षि लोक

लेखक

वैकुण्ठनाथ उपाध्याय

प्रकाशक :—

श्री भृगु प्रकाशन

के. ४३[illegible]३ बंगाली बाड़ा

विश्वेश्वरगंज,

वाराणसी ।

मुद्रक :—

विष्णु मुद्राणलय

पियरी कला

वाराणसी

मूल्य १.५० पैसा

(प्रबोधनी एकादशी कार्तिक शुक्ल ११ संवत् २०२६)

सम्पादक मण्डल

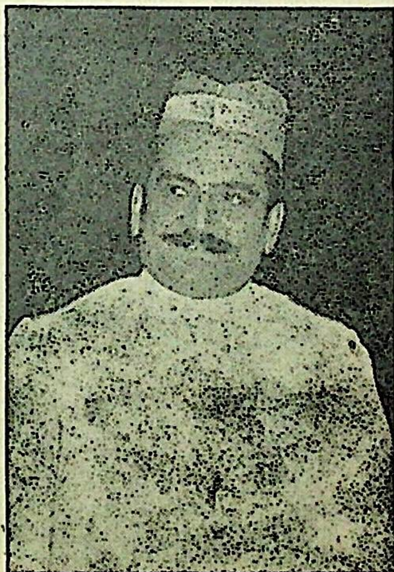
पं० जनार्दन शास्त्री पाण्डेय

पं० विश्वनाथ शास्त्री दातार

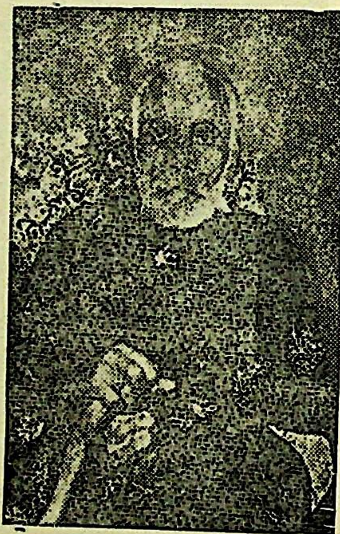
पं० उदयकृष्ण नागर

डा० भानुशंकर मेहता

हर हर महादेव



बाबा 'विश्वनाथ' के प्रतीक, काशिराज महाराज
'श्रीविभूतिनारायण सिंहजी'
को
सादर समर्पित



काशी के गौरव वेदमूर्ति
विद्वच्छिरोमणि शास्त्ररत्नाकर पद्मभूषण पण्डितराज
श्रीराजेश्वर शास्त्री द्राविड़

आमुख



विद्यापति भगवान विश्वनाथ की राजधानी काशी में मुमुक्षु के लिए मंगलमय आध्यात्मिकभाव उपलब्ध करना कठिन नहीं है। देवी-देवताओं के यहाँ वास करने का भी यही उद्देश्य है। इनके दर्शन करने से दर्शक उनकी छाया, तेज, प्रभाव, सुलक्षणता आदि अनेक गुणों से प्रभावित होता है।

काशी में सन्त-महात्माओं को आनन्द की अनुभूति होती रही है। मनिषि, महात्मा, ऋषि, दार्शनिक, साधु, वैदिक, राजा-महाराजा काशी माता की गोद में आकर अपने जन्म को सफल बनाते हैं। इस प्रकार देवताओं तथा विद्वानों के संगम में स्नान करने वाले अज्ञजनों को काशी का आध्यात्मिक प्रकाश दुर्लभ नहीं है। इस सम्बन्ध में श्रुति वाक्य इस प्रकार है।

यस्य देवे परा भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैतेऽकथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

वह काशी धन्य है जहाँ रहने के लिए आनन्द से परिपूर्ण प्रकाशमय स्थान, सन्तों की कथाएँ अनायस सुनने को, स्नान करने के लिए पापवासनाओं को समाप्त करने वाली भागीरथी गंगा का सान्निध्य, तथा प्रतिपद पर चलते-चलते भगवान शम्भु का दर्शन सुलभ है।

पहले देवी-देवताओं का राज्य होता था। राजा, मात्र उनका प्रतिनिधित्व करते थे। जैसे काशी के राजा बाबा विश्वनाथ, अयोध्या के राम, मथुरा और द्वारिका के कृष्ण, उज्जैन के महाकाल परन्तु वहाँ के नरेश उनकी ओर से उनकी मर्यादाओं का पालन करते हुए प्रजा का सर्वविध रक्षण करते रहे। परिणाम होता रहा कि सभी

राज्यों में प्रजा समता के व्यवहार से आबद्ध रहती थी। सब अपने-अपने धर्म में तत्पर रहते थे। आज देवता के प्रतिनिधि के स्थान पर हम सब स्वयं अधिकारी बन बैठे हैं। अतः हममें से देव, ऋषि, गुरु, माता-पिता के प्रति भक्ति का भाव समाप्त हो गया है। इसकी प्रतिष्ठापना के लिए हम काशी वासियों को पूर्व मर्यादा में रहकर कम से कम काशी के देव मन्दिरों की प्रदक्षिणा और उनकी यात्रा में लगना होगा तभी हमारा अभ्युदय हो सकेगा।

सौभाग्य की बात है कि महाराजा काशी नरेश आज भी भगवान श्री राम व श्री कृष्ण की लीलाओं का आयोजन तथा देव दर्शन व तीर्थ यात्रा कर वैदिक परम्परा का निर्वाह एवं उसे प्रोत्साहित कर रहे हैं। कम से कम सभी काशी वासियों को इस ओर ध्यान देना चाहिए।

निति शास्त्रों के अनुसार राजा शब्द का अर्थ होता है 'अभिषिक्त जनपदपरिपालनाधिकृत'। ऐसा होने से ही औचित्य बनता है। आज औचित्य कैसे बने इस पर हमें सोचना होगा। यह निश्चित है कि बिना विद्या (वेद शास्त्र की विद्या) के प्रतिभा आ नहीं सकती और बिना प्रतिभा के औचित्य बन नहीं सकता। विद्याध्ययन, देव मन्दिरों का दर्शन व पूजन, तीर्थों की यात्रा तथा गुरु भक्ति प्रतिभा के प्रगट होने में सहायक होती है।

शास्त्रकारों ने कहा है कि :—

येन कर्मणा प्रसन्नः गुरु राज देवतादिः।
अभिष्ट फलदो भवति तद्धि कर्मणाः औचित्यम्॥

गुरु प्रसाद के साथ-साथ देव प्रसाद और देवता के प्रतिनिधि 'अभिषिक्त राजा' का प्रसाद भी आवश्यक है। इन तीनों के प्रसाद से ही औचित्य बनाता है।

इसलिए काशी के देव मन्दिरों और तीर्थों की रक्षा एवं मर्यादा का ध्यान देना तथा उनके सम्मान में अपना तन-मन-धन लगाना आवश्यक है। इन सबको देखते हुए श्री काशी खण्ड का प्रकाशन कार्य मुझे अत्यन्त सामयिक प्रतीत होता है।

काल-महिमा, आलस्य, अशक्ति, प्रमाद आदि को छोड़ काशीवासी, काशी की प्राचीन परम्परा को पुनरुज्जीवित करने में लगें यही हमारी कामना है। उनके इस कार्य में श्री काशी खण्ड सहायक है और रहेगा। सम्पूर्ण काशी खण्ड को आधुनिक स्वरूप देने में श्री वैकुण्डनाथ उध्याय यह पञ्चम प्रयास है।

मैं भगवान विश्वनाथ से प्रार्थना करता हूँ कि श्री वैकुण्ठनाथ उपाध्याय पर वह अपना वरदहस्त रखें और उन्हें शक्ति प्रदान करें कि वह इसी प्रकार उत्तरोत्तर सम्पूर्ण काशी खण्ड लिखने में समर्थ हों।

श्रीराजेश्वर शास्त्री द्राविड़

—:o:—

निवेदन

भगवान् विश्वनाथ की कृपा से श्री काशीखण्ड का यह पंचम पुष्प आपके समक्ष प्रस्तुत करने में मुझे महान प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

आप सबके सहयोग और सान्त्वना से प्रभावित होकर ही मैं इस कार्य में रत हूँ। इस बार मुझे ऐसे अनेक देव स्थानों का दर्शन करने का जो सौभाग्य प्राप्त हुआ उससे यही अनुभूति हुई कि यदि मैं काशी खण्ड को न लिखता तो इस जीवन में इन देवताओं के दर्शन मुझे दुर्लभ ही थे।

कई स्थानों की दशा देखकर मैं मर्माहत भी हुआ हूँ। बड़े दु:ख के साथ हमें निवेदन करना पड़ रहा है कि आज अनेक तीर्थों के अस्तित्व को समाप्त करने का योजनाबद्ध कार्य हो रहा है जिसकी ओर सारे आस्तिक समाज का ध्यान जाना नितांत आवश्यक है। सबकी आँखों में धूल झोंक कर स्वार्थी लोग उक्त पाप कर रहे हैं।

देवी-देवताओं और तीर्थों के स्थानों की रक्षा करना काशी-वासियों का प्रमुख कर्त्तव्य है क्योंकि वे यहाँ के ड्योढ़ीदार हैं यह उनका कर्त्तव्य है कि उसे नष्ट होने से यथा शक्ति वे बचायें। इनकी रक्षा न होने से हमारी रक्षा यह देव नहीं करेंगे फलत: हमारा आज का यह प्रमाद आगे चलकर हमारे तथा हमारे परिवार के लिए कष्टकारक ही सिद्ध होगा।

काशी के देव-मन्दिरों में जाकर मूर्तियों का दर्शन करना और जो तीर्थ अब भी उपलब्ध हैं उनमें जाकर स्नान करना अथवा मार्जन करना प्रत्येक काशीवासी का धर्म है। सबके इस प्रकार यात्रा करने से वे स्थान सबसे परिचित होंगे तथा उनके जीर्णोद्धार में हमारी

रुचि होगी। इससे हमारे परिवार का उत्तम संस्कार बनेगा। एक साथ सभी स्थानों पर जाना सबके लिए सम्भव नहीं होगा। श्री काशीखण्ड के प्रकाशन के साथ-साथ यदि पुस्तक के सहारे हम यात्रा करेंगे तो थोड़े वर्षों में मेरी भांति आप सबको भी दर्शन सुलभ हो जायेगा।

श्री मद्गोस्वामी तुलसीदास जी ने ठीक ही कहा है कि 'बड़े भाग ते मानुष तन पावा' तात्पर्य यह है कि जन्म-जन्मांतर के जब अधिक पुण्य उत्पन्न होते हैं तभी जीव मनुष्य का शरीर पाता है। अस्तु मनुष्य-तन पाकर भी यदि हम मोक्षदायिनी काशी के आध्यात्मिक वैभव से अपना निकटतम संबंध न बना सके और कुवासनाओं में ही लगे रहे तो हमारा कल्याण कैसे होगा। बड़े भाग्य से मनुष्य-तन मिला है। उसे सुफल करना तभी सम्भव होगा जब हम काशी के पवित्र स्थानों का दर्शन करेंगे और उनकी सेवा और रक्षा में किसी न किसी प्रकार से लगे रहेंगे।

एक प्रार्थना हम अपने पाठकों से और करेंगे कि काशी के संबंध में जिसे जो ज्ञात हो मुझे लिख भेजने की कृपा करें जिससे मुझे काशी-खण्डोक्त स्थानों का इतिहास और वर्तमान परिस्थित पर भली प्रकार से प्रकाश डालने में सुलभता हो।

हमें आशा और विश्वास है कि आप सबका स्नेह पूर्ववत मुझे प्राप्त होगा और आप सबके पुण्य के बल पर मैं अपने कार्य में रत रहूँगा।

—वैकुण्ठनाथ उपाध्याय

—:o:—

धन्यवाद

हम काशी नरेश महाराजधिराज श्री विभूतिनारायणसिंह जी के चिर ऋणी रहेंगे, उन्होंने पहले की भाँति इस पंचम ग्रन्थ का भी अपने करकमलों द्वारा प्रकाशनोद्घाटन करना स्वीकार किया।

साथ ही प्रातःस्मरणीय वेदमूर्ति पण्डितराज श्रीराजेश्वर शास्त्री द्राविड़ जी को प्रणाम करते हुए प्रार्थना करते हैं कि जिस प्रकार उन्होंने हमें मार्ग दर्शाया है उसी प्रकार से उनकी कृपा हम पर सदा बनी रहेगी।

काशी के सन्तप्रवर श्री सन्त छोटेजी महाराज के हम सदा ऋणी रहेंगे, जिन्होंने हमारे प्रकाशन को अपनाया और अपने प्रवचनों में इसका उल्लेख कर रहे हैं तथा काशी वासियों को इस ग्रन्थ को पढ़ने के लिए उद्बोधित कर रहे हैं। भगवान् का कार्य सन्त कर रहे हैं यह महान् शोभा है।

इस पंचम भाग के प्रकाशन में पं० जनार्दन शास्त्री पाण्डेय, पं० विश्वनाथ शास्त्री दातार, पं० उदयकृष्ण नागर तथा डा० भानु शंकर मेहता ने जो योग दिया उसके लिए हम उनके आभारी हैं।

श्री काशीखण्ड के लिए जो स्नेह पं० बृजमोहन जी दीक्षित, सर्व श्री नन्दलाल प्रह्लादका, मुरारी लाल केडिया, रामजी दास, प्राचार्य कृष्ण कुमार शाह, नन्दलाल बर्मन, देवकीनन्दन केडिया आदि महानुभावों, ने हमें दिया उसके लिए हम उन्हें बधाई देते हैं।

इस अंक के रेखा चित्रकार श्री अरुण बा० क्षीरसागर को धन्यवाद देना न भूलूंगा जो उन्होंने बड़ी तन्मयता से चित्र बनाये। श्री अन्नपूर्णा ब्लाक वर्क्स, श्री काली प्रसाद को हम इस अवसर पर बधाई देते हैं जिन्होंने थोड़े समय में अङ्क निकालने में हमने सहयोग दिया।

रामनारायण उपाध्याय

विषय-सूची

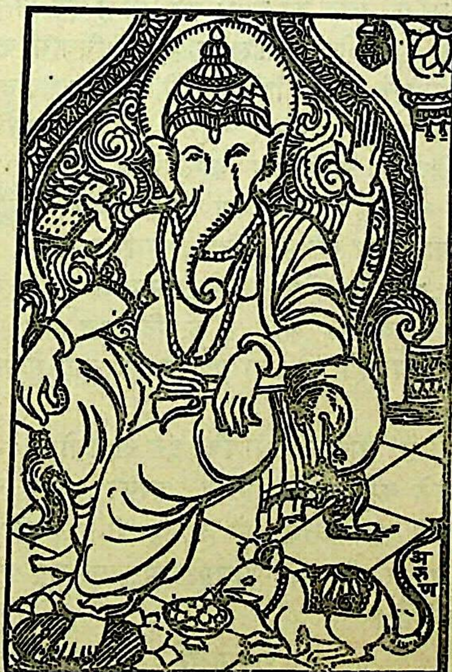
चित्र-सूची

—:o:—

श्रीगणेशाय नमः

अध्याय १४

ईशानलोक और चन्द्रलोक



विश्वेशं माधवं ढुंढि दण्डपाणिं च भैरवम् ।
वन्दे काशीं गुहां गंगां भवानी मणिकर्णिकाम् ।।

ईशानलोक

भगवान विष्णु के दोनों गणों ने यात्रारत पं० शिवशर्मा से कहा कि अलकापुरी से आगे यह "ईशान" पुरी है। इसमें सर्वदा शिवभक्त एवं तपोधन अर्थात् तपस्वी लोग निवास करते हैं। इसे रुद्रपुर भी कहते हैं। जिन लोगों की यहीं पर स्वर्ग भोग की कामना रहती है वे लोग मृत्यु के उपरान्त इस पुरी में स्वर्ग का सुख भोगते हैं। इनके अतिरिक्त जो लोग शिव के स्मरण में, शिव व्रत में दक्ष हो, अपने सब कर्मों को शिव को अर्पण कर देते हैं एवं नित्य शिव-पूजन में तत्पर रहते हैं वे लोग भी इस रुद्रपुरी में निवास करते हैं।

इस रुद्रपुरी के देवता त्रिशूलधारी अज, एकपाद, अहिर्बुध्न्य आदि एकादश रुद्र हैं। ये श्रेष्ठ रुद्रगण उक्त आठो पुरियों की दुष्टों और देव-द्रोहियों से सदा रक्षा करते रहते हैं और शिवभक्तों को वरदान दिया करते हैं। ये रुद्रगण वाराणसीपुरी में शुभ करने वाले भगवान 'ईशानेश्वर' का महालिंग स्थापित करके वहाँ तपस्या कर चुके हैं। भगवान 'ईशानेश' के प्रसाद अर्थात वरदान से ईशान दिशा (उत्तर-पूर्व का कोण) के दिक्पाल पद को सुशोभित करने वाले ये ग्यारहो रुद्र सदा सहचर एवं जटा-मुकुट धारण किये रहते हैं।

विष्णुगणों ने आगे बताया कि इन रुद्रगणों के भाल पर नेत्र रहता है, इनके कण्ठ नीले होते हैं, इनका शरीर गौर वर्ण का होता है तथा ये वृषभध्वज होते हैं। पृथ्वी पर रहने वाले असंख्य रुद्रगण सभी प्रकार की भोग-सामग्री उपलब्ध कर इसी ईशानपुरी में निवास करते हैं।

ईशानेश्वर

जो लोग काशी में 'ईशानेश्वर' की पूजा करते हैं और संयोगवश काशी से बाहर कहीं उनकी मृत्यु हो जाती है तो वे सब भगवान

'ईशानेश्वर' की कृपा से इसी पुरी में निवास करते हैं। जो लोग अष्टमी और चतुर्दशी को काशी में भगवान ईशानेश्वर की पूजा करते हैं वे लोग इस पुरी में अथवा अन्य किसी लोक में जहाँ भी वे रहते हैं, रुद्र रूप में ही रहते हैं।

भगवान 'ईशानेश्वर' के समक्ष किसी भी चतुर्दशी (कृष्ण पक्ष या शुक्लपक्ष) को उपवास कर रात्रि में जागरण करने वाला मनुष्य पुनः गर्भ में निवास नहीं करता अर्थात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

चन्द्रलोक

स्वर्ग-मार्ग में विष्णुगणों से उक्त कथामृत सुनकर शिवशर्मा बड़े प्रमुदित हुए और दिन में ही चन्द्रमा की चाँदनी देखकर बड़े आश्चर्य में हो दूतों से पूछा कि "हे विष्णुगण ! यह कौनसा लोक है ?"।

अत्रि ऋषि की उत्पत्ति

इस पर विष्णुदूतों ने बताया कि हे महाभाग! शिवशर्मन जिसके अमृतवर्षी किरण से संसार तृप्त होता है उसी कला निधि का यह लोक है। पूर्वकाल में सृष्टि की रचना करने वाले ब्रह्मा जी के मन से अत्रि ऋषि अर्थात् चन्द्र के पिता उत्पन्न हुए थे।

चन्द्र का प्रादुर्भाव

दूतों ने कहा कि हम लोगों ने सुना है कि अत्रि ऋषि ने तीन सहस्त्र (हजार) वर्ष तक 'अनुत्तर' नामक सर्वोत्तम तप किया था। उसी बीच तपस्यारत अत्रि ऋषि का उर्ध्वगतरेत 'सोमत्व' को प्राप्त होकर समस्त दिङ मण्डल को प्रकाशित करता हुआ उनके दोनों नेत्रों से दस बार निकला। जिसे दसो दिशाओं की दिग्देवियों ने मिलकर धारण किया परन्तु वे उसे रख न सकी। जब वे

दिशायें उस गर्भ को धारण नहीं कर सकीं तो वही गर्भ 'चन्द्र' रूप में भूतल पर अवतरित हुआ।

ब्रह्मा और चन्द्र

लोकपिता ब्रह्मा जी ने चन्द्र को पृथ्वी से उठा कर अपने रथ पर चढ़ा लिया। ब्रह्मा जी ने चन्द्र को रथपर लिये २१ बार समुद्रान्त पृथ्वी की परिक्रमा की। इसी प्रदक्षिणा में चन्द्र का जितना तेज द्रवित हो (पिघलकर) पृथ्वी पर गिरा उसे पृथ्वी ने धारण किया और यही तेज पृथ्वी के गर्भ से औषधि रूप में प्रकट होकर संसार की रक्षा करता है।

राजा चन्द्र

विष्णु दूतों ने बताया कि पितामह ब्रह्मा जी द्वारा पोषित चन्द्र, तेज पाने पर अविमुक्त क्षेत्र (काशी) में आकर अपने नाम से 'चन्द्रेश्वर' नामक शिव लिङ्ग स्थापित किया और उन्होंने 'चन्द्रेश्वर लिङ्ग' के समक्ष १०० पद्म वर्ष तक तपस्या किया। इनकी घोर तपस्या से प्रसन्न होकर पिनाकी भगवान विश्वानाथ ने चन्द्र को 'बीज, औषधि, जल और ब्राह्मणों, का अधिपति अर्थात् राजा बनाया।

चन्द्र-कूप

चन्द्र ने अपने तपस्या काल में ही अमृतोद नामक कूप बनाया था। उस कूप का जल पीने से या उससे स्नान करने से मनुष्य को ज्ञान का प्रकाश मिल जाता है इस प्रकार मन में व्याप्त अन्धकार से वह मुक्त हो जाता है। (इस अमृतोद-कूप को चन्द्रकूप के नाम से जाना जाता है।)

विश्वनाथ के मस्तक पर चन्द्र

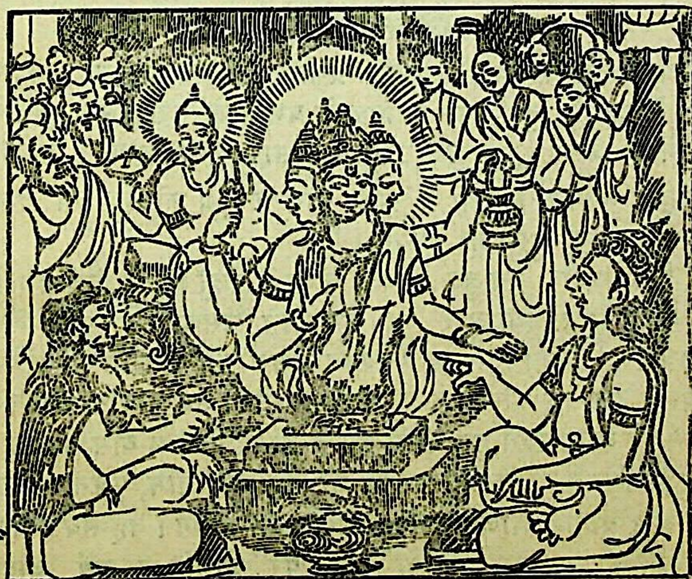
भगवान विश्वनाथ ने प्रसन्न हो कर जगत्संजीवनी उस चन्द्र की एक कला को स्वयं लेकर अपने मस्तक पर धारण किया।

दक्ष प्रजापति के शापवश प्रत्येक मास के अन्त में चन्द्र का क्षय होता है पर भगवान शिव के मस्तक पर स्थित उस एक कला के प्रताप से चन्द्र पुनः परिपूर्ण हो जाता है।

चन्द्रका राजसूय-यज्ञ

'सोमयज्ञ' करने वालों में श्रेष्ठ चन्द्र ने इतना विशाल राज्य और अधिकार प्राप्त कर सहस्रशत दक्षिणा से पूर्ण अपना राजसूय-यज्ञ प्रारम्भ किया।

बिष्णु गणों ने शिवशर्माको बताया कि हम लोगों ने तो यहाँ तक सुन रखा है कि चन्द्र ने यज्ञ में प्रधान ब्रह्मर्षियों और ब्राह्मणों को तीनों लोक दक्षिणा में दे डाला था।



चन्द्र के राजसूय-यज्ञ में ब्रह्मा के स्थान पर स्वयं ब्रह्मा जी ही उपस्थित थे। मुनियों में अत्रि, भृगु, मरिचि आदि ऋत्विक थे। सभी

ऋषियों के साथ स्वयं भगवान विष्णु सभासद के रूप में बैठे थे। उस समय चन्द्र की सेवा में सिनी, कुहू, द्युति, पुष्टि, प्रभा, बसु, कीर्ति, धृति और लक्ष्मी (शोभा) ये नव देवियाँ तत्पर थी। उमा सहित भगवान शिवको यज्ञ द्वारा प्रसन्न एवं तृप्त करने के बाद उनके द्वारा दिये गये 'सोम' नाम से चन्द्र विख्यात हुए।

सोम (चन्द्र) ने काशी में चन्द्रेश्वर के समक्ष दुष्कर तप और राजसूय-यज्ञ किया था। उसी स्थान पर प्रसन्न होकर ब्राह्मणों ने त्रैलोक्य की दक्षिणा देने वाले सोमको अपना अधिपति (राजा) स्वीकार किया। काशी के इसी स्थान पर चन्द्रको भगवान त्रिलोचन का वाम नेत्र स्थान प्राप्त हुआ था।

शिव का वरदान

अत्यन्त प्रसन्न चित्त होकर चन्द्रको आशीर्वाद देते हुए भगवान् शिव ने कहा कि तुम अपने तपोवल के प्रभाव से मेरी दूसरी मूर्ति के रूप में हो जाओ। तुम्हारे उदय से संसार सुखी होगा। तुम्हारे अमृत के समान किरणों के स्पर्श मात्र से सूर्य की गर्मी से त्रस्त संसार के जीव सुखी हो जायेंगे।

अन्य वरदान देते हुए भगवान शम्भु ने कहा कि हे द्विजराज ! इस काशी में तपस्या और यज्ञ कर तुमने उसका फल मुझे अर्पित (शिवार्पण) किया है, यह चन्द्रेश्वर नामक जो मेरा लिंग स्थापित किया है, इन सव कारणों से प्रत्येक पूर्णमासीको अर्ध चन्द्र धारण किए हुए सर्वत्र व्याप्त रहते हुए भी मैं इस चन्द्रेश्वर लिंग में वास करूँगा। अस्तु पूर्णिमा के दिन यहाँ पर जो भी कुछ जप, होम, पूजन, ध्यान, दान ओर ब्राह्मण भोजन आदि सत्कर्म किया जायेगे। वह सब हमारी महापूजा को देने वाला होगा। यहाँ पर जीर्णोद्धार कर्म, वादन (नौबत), नृत्य, आदि का अनुष्ठान, ध्वजारोपण, तपस्वियों और यतियों के तृप्ति साधन का उपाय जो करेगा वह महाफल को प्राप्त करेगा।

हे सोम ! तुमसे मैं एक गुप्त बात और कहता हूँ जिसे तुम नास्तिक व वेद-द्रोही से मत कहना, ध्यान से सुनो। सोमवारको यदि अमावास्या हो तो सज्जनोंको चाहिये कि शनिवार त्रयोदशी के दिन, दिनभर उपवास कर सायंकाल इस चन्द्रेश्वर लिंग का पूजन कर रात्रिमें भोजन करें, पुनः चतुर्दशी (सूर्यवार) को उपवास कर रात्रिमें इस लिंग के समक्ष रात्रिभर जागरण करें और प्रातः सोमवती अमावास्याको इस चन्द्र कूप के जल से स्नान, सन्ध्या और तर्पण आदि क्रियाओंको सम्पन्न करें और इस तीर्थ (कूप) के समीप श्राद्ध आरम्भ करें। तीर्थ-श्राद्ध में आवाहन और अर्घ्य-दान नहीं करना चाहिए। वसु, रुद्र और आदित्य स्वरूप अपने विगत पिता, पितामह, प्रपितामहको पिण्डदान करें, विगत मातामहादिक पुरुषत्रय, और भी सगोत्री, गुरु, श्वसुर, एवं बन्धुगणों का नाम उच्चारण करके पिण्डदान करना चाहिए। इस भाँति इस तीर्थ में किये गये श्राद्ध से सबका उद्धार हो जाता है।

गया श्राद्ध के समान फल

उक्त विधि से सोमवती अमावास्याको किये गये श्राद्धका फल गया तीर्थ में विधि पूर्वक किये गये श्राद्ध के फल के समान होता है और पितरों की तृप्ति भी समान रूप में होती है। काशी में इस चन्द्र-तीर्थ पर किये गये उक्त श्राद्ध से मनुष्य, पितृऋण से मुक्त हो जाता है।

भगवान विश्वनाथ ने आगे बताया कि जब कोई व्यक्ति इस चन्द्रेश्वर लिंगका दर्शन करने अपने स्थान से चलता है तब उसके पितर प्रसन्नता से नाचने लगते हैं और कहने लगते हैं कि 'यह चन्द्र तीर्थ' में जाकर हम सबके लिए तर्पण करेगा। यदि हमारे दुर्भाग्य से तर्पण न करेगा तो जल स्पर्श करेगा ही बस उतने से ही हमारी तृप्ति हो जायेगी। यदि मूर्खता के कारण यह जल भी स्पर्श नहीं

करेगा तो भी वहाँ उसके जाने मात्र से हम सब सन्तोष करेंगे कि वह वहाँ गया तो सही, इतने से ही हमारी तृप्ति हो जायेगी।"

व्रती मनुष्य विधिपूर्वक यहाँ चन्द्रतीर्थ में सोमवती अमावास्या को श्राद्ध करने के पश्चात् ब्राह्मण और यतिगणोंको भोजन आदि करावे और उन्हें सन्तुष्ट करके तब स्वयं प्रसाद ले। हे मृगांक ! काशी में इस प्रकार चन्द्र-तीर्थ में सोमवती अमावस्या का जो व्रत करेगें वे मेरे ही अनुग्रह से देव-ऋण, ऋषि-ऋण, एवं पितृ-ऋण से मुक्त हो जाते हैं।

सिद्ध क्षेत्र

भगवान विश्वनाथ ने आगे वताया कि चैत्रमास की पूर्णमासी को यदि चित्रा नक्षत्र हो तो उस दिन तारक ज्ञान के लाभार्थ क्षेत्र-विघ्नविध्वंसिनी काशी-यात्रा करना आवश्यक है। यदि कोई व्यक्ति चन्द्रेश्वर का पूजन कर अन्यत्र कहीं जाकर मरेगा तो वह समस्त पाप-पुंज का भेदन कर सीधे चन्द्रलोक में पहुँच जायेगा। भगवान ने वताया कि कलियुग में भाग्यहीन लोग ही चन्द्रेश्वर की महिमा को नहीं समझेंगे और न जान सकेंगे। हे निशापते ! एक अत्यन्त गुप्त भेद यह बताता हूँ कि यह स्थान सिद्ध योगेश्वर पीठ है यहाँ पर साधक-गण को पूर्ण सिद्धि मिलती है। सुर, असुर, गन्धर्व, नाग, विद्याधर, राक्षस, गुह्यक, यक्ष, किन्नर और मनुष्यगणों में से सात करोड़ साधक मेरे समक्ष यहाँ साधना कर सिद्ध हो चुके हैं। छः मासतक नियत आहार करते हुए विश्वेश्वरी का ध्यान करने से और चन्द्रेश्वर लिंग की पूजा करने के निमित्त आने से यहाँ मनुष्य को सिद्धों का दर्शन होने लगता है। साक्षात् 'सिद्धयोगेश्वरी' (सिद्धेश्वरी) देवी उसे वरदान देती हैं और कहती हैं कि हमारा दर्शन करने से तुम्हें भी बड़ी सिद्धि का लाभ हो।

भगवान ने चन्द्र से आगे बताया कि यों तो संसार में साधकों को साधना के लिए अनेक सिद्ध पीठ हैं परन्तु इस योगेश्वरी पीठ के समान अन्य स्थान शीघ्र ही सिद्धि देने वाला अन्यत्र नहीं है। शशिन्! जहाँ पर तुमने यह चन्देश्वर लिंग प्रतिष्ठापित किया है, अजितेन्द्रिय लोगों से अदृश्य यही वह पीठ है। जितकाम जितक्रोध, जितलोभ और जितस्पृह लोग ही मेरी परमशक्ति उस योगेश्वरी देवी का दर्शन प्राप्त कर सकते हैं। जो लोग प्रति अष्टमी और प्रति चतुर्दशी को इस सिद्ध-योगेश्वरी पीठ स्थान पर अदृश्यरूपा, सुभगा, सकल सिद्धप्रदात्री, पिंगला देवी का धूप—दीप—नैवेद्य आदि के द्वारा भक्ति-भाव से पूजन करेंगे उन्हीं लोगों के समक्ष वह देवी प्रगट होती है।

विष्णु दूतों ने शिवशर्मा से यह सब बताते हुए कहा कि भगवान विश्वनाथ अपनी नगरी में इस भाँति चन्द्रदेव को वरदान देकर उसी स्थान पर अन्तरधान हो गये। तभी से द्विजराज चन्द्रमा अपने फैलते हुए किरणों में दिङमण्डल को अन्धकार रहित करते हुए इस लोक में निवास कर रहे हैं। जो व्यक्ति चन्द्र की उत्पत्ति और उनके तपस्या आख्यान को सुनेगा वह अवश्यमेव इस चन्द्रलोक का निवासी बनेगा।

अगस्त्य ऋषि अपनी पत्नी लोपामुद्रा से कहने लगे कि विष्णु के गण शिवशर्मा ब्राह्मण को स्वर्ग-मार्ग में जाते समय यह उत्तम कल्याणकारी, सकल श्रमहारिणी और शुभदायिनी कथा कहते हुए नक्षत्र लोक की ओर अग्रसर हुए।

इस प्रकार श्रीस्कन्द पुराण के अन्तर्गत चतुर्थखण्ड 'काशी खण्ड' के पूर्वार्द्ध में ईशान लोक और चन्द्र लोक नामक १४ वें अध्याय की कथा का भाषा में वर्णन किया गया।

अध्याय १५

नक्षत्रलोक और बुधलोक

अगस्त्य मुनि पुनः कहने लगे कि हे महाभागे ! सहधर्मिणि ! पत्नि ! लोपामुद्रे ! विष्णु पारिषदों ने शिवशर्मा से आगे की कथा जिस भाँति कही वह सुनो ।

शिवशर्मा ने कहा कि हे गणद्वय आपने चन्द्रमा की बड़ी ही विचित्र कथा सुनाई । आपलोग समस्त आख्यानों के ज्ञाता हो अतः इस नक्षत्र-लोक की महिमा भी हमें बताइये ।

गणों ने वताया कि एक समय की बात है कि प्रजाओं की सृष्टि के अभिलाषी स्रष्टा के अंगुष्ठ पृष्ठ (अंगूठे के पिछले भाग से) से प्रजासर्जन में दक्ष (निपुण) दक्षप्रजापति की उत्पत्ति हुई। जिनकी रोहिणी आदि ६० सुन्दर कन्यायें हुईं । ये सब कन्यायें काशी में आकर उमासहित भगवान शिव की उपासना करने लगीं । इनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान प्रगट हुए और कहने लगे कि 'तुम सब उत्तम वर माँगो" ।

भगवान को अपने समक्ष खड़ा देखकर और उनके वचन सुनकर साठों कुमारियों ने उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहने लगीं कि हे महादेव ! यदि आप हमारी उपासना से प्रसन्न हैं तो हमें यही वर दें कि जो आप से भी अधिक संसार का संताप हरण करने वाला हो तथा रूप में आपके समान हो वही हमारा पति बने ।

इन कुमारियों ने वरुणा नदी के तट पर संगमेश्वर के निकट नक्षत्रेश्वर लिंग स्थापित किया और पुरुषायित संज्ञक महातपस्या को किया, ज़ो पुरुषों के लिए कठिन है । भगवान शिव ने सभी कन्याओं

को एक ही पर दत्तचित्त और एकही की पत्नी होने की अभिलाषिणी समझ उन्हें निम्नलिखित उत्तम वरदान दिये।

शिव-वरदान

भगवान विश्वनाथ ने कहा कि तुम से पूर्व किसी भी स्त्री ने इस प्रकार की कठोर तपस्या (नक्षांत) सहन नहीं की थी। अतः



तुम सबका नाम नक्षत्र होगा। इस समय तुम लोगों ने जो यह 'पुरुषायित' तपस्या किया है उससे तुम पुरुषत्व को प्राप्त होगी। ज्योतिश्चक्र में समग्र तुम सब अग्रगामिनी होगी। मेष आदि राशियों की उत्तम योनि (उत्पत्ति क्षेत्र) तुम्हीं सब होओगी।

हे सुमुखियो ! औषधियों का, अमृत का एवं ब्राह्मणों का अधिपति (राजा) चन्द्र है वही तुम सबका पति होगा। तुम्हारे द्वारा स्थापित इस नक्षत्रेश्वर लिंग की पूजा करने वाले ही तुम लोगों के उत्तम नक्षत्र लोक में जावेंगे। चन्द्र लोक के ऊपर तुम लोगों का नक्षत्र लोक होगा। समस्त ताराओं में तुम सब माननीय होगी।

भगवान विश्वनाथ ने आगे कहा कि जो लोग नक्षत्रों की पूजा करने वाले तथा नक्षत्रों के अनुसार व्रताचरण करने वाले हैं वे सब नक्षत्रों ही के समान देदीप्यमान तुम्हारे लोक में बसेंगे। जो लोग काशी में नक्षत्रेश्वर का दर्शन करेंगे उन्हें कभी भी नक्षत्र, ग्रह और राशियों से पीड़ा नहीं होगी वे सभी अनुकूल रहेंगे। यह सब उत्तम वर देकर भगवान अन्तरधान हो गये।

अगस्त्य ऋषि ने आगे बताये कि विष्णु-गणों के उक्त कथा कहने के पश्चात् अति शीघ्र शिवशर्मा का विमान बुध लोक के समक्ष उपस्थित हो गया।

बुधलोक

शिवशर्मा ने उनसे पूछा कि यह लोक किस का है और इसकी महिमा भी हमें समझाइये। चन्द्रलोक के समान यह लोक हमारे मन को हर्षित कर रहा है।

विष्णुगणों ने कहा कि हे शिवशर्मन् ! स्वर्ग-मार्ग के विनोदार्थ इस पाप हारिणी, तीनोताप की विनाशक उत्तम कथा को सुनो।

हम लोगों ने अभी थोड़ी देर पूर्व जिस साम्राज्य पद के प्राप्त कर्त्ता महाकान्तिमान् द्विजराज की कथा कही है, जिसने त्रिभुवन को राजसूय-यज्ञ में ब्राह्मणों को दक्षिणा में दे डाला था, जिसने शतपद्मवर्ष तक अति उग्र तपस्या किया था, जो अत्रि के नेत्र से उत्पन्न हुए थे इस प्रकार जो ब्रह्मा के पौत्र हैं, सभी औषधियों के स्वामी हैं एवं सभी ज्योतियों के स्वामी हैं, निखिल निर्मल कलाओं के निधि हैं,

जो उदय हो कर अपने किरण रूपी हाथों से मानों दूसरों के सन्ताप को धक्का देते हैं, जो अपने उदय के साथ कुमुदिनी (कोई) को आनन्द प्रदान करते हैं, जो दिगङ्गनाओं के सुन्दर शृङ्गार को देखने हेतु दर्पण स्वरूप हैं, और क्या कहें जिसकी उत्तम कला के एक अंश को स्वयं भगवान महादेव ने अपने मस्तक पर धारण कर रखा है तो भला वह ऐसा चन्द्र के समान और कौन हो सकता है। उसी रूपवान विधु (चन्द्र) ने अपने ऐश्वर्यमद में आकर अपने गुरु, पुरोहित, चचेरे भाई अर्थात् अङ्गिरा ऋषि के पुत्र बृहस्पति जी की परम सुन्दरी पत्नी तारा देवी का देवताओं द्वारा बारम्बार निवरित (छुड़ाने) होने पर भी बलपूर्वक हरण कर लिया।

इसमें उस कलानिधि का कोई दोष नहीं देना चाहिए क्योंकि भगवान त्रिलोचन को छोड़कर कामदेव ने किसे नहीं अपने वश में किया है और किसका मन खण्डित नहीं किया है। चारो ओर फैलने वाले तम (अन्धकार) को दूर करने के लिए तो विधाता ने दीप, और सूर्य के किरण आदि महौषध की रचना कर रखी है परन्तु आधिपत्य से उत्पन्न 'तम' को दूर करने के लिए उन्होंने कुछ भी नहीं बनाया। क्योंकि मदमोहित, आधिपत्य (प्रभुत्व) प्राप्त जन को उसके हित की बात कहने पर भी उसे अच्छी नहीं लगती यहाँ तक कि उसे भगवान हरि की कथा भी स्पर्श नहीं कर पाती। जिस प्रकार विपरीत चित्त और दुर्जन व्यक्ति को तीर्थ में स्नान करने पर भी शुद्ध-बुद्धि स्पर्श नहीं कर पाती उसी प्रकार का इस चन्द्र को भी समझना चाहिये। आधिपत्यान्ध होकर इसने ऐसा निन्दित कर्म किया। ठीक ही कहा गया है कि पुष्पायुध धारण किये कामदेव ने त्रिभुवन में भला किसे नहीं जीता है, कौन क्रोध के वशीभूत नहीं हुआ, लोभ ने किसे मोहित नहीं किया है, कामिनियों के लोचन रूपी भाला से हृदय विदीर्ण होने

पर भला कौन आपत्ति में नहीं पड़ा। ऐसा भी कोई नहीं है जो राज्यश्री को पाकर सुन्दर आँखें रहते हुए भी अन्धे की उपाधि से विभूषित नहीं हुआ है। आधिपत्य एवं ऐश्वर्य लक्ष्मी, अत्यन्त चञ्चला है उसे प्राप्त करके प्राणीमात्र संसार में सत्-असत् (भला-बुरा) सब कुछ प्राप्त कर सकता है। परन्तु उसका फल उसे तदनुरूप ही मिलता है। अस्तु सच्चरित्र लोगों को जैसा उत्तम लगे वैसा करना चाहिये।

जब चन्द्र ने उद्धत होकर बृहस्पति के लिए तारा को नहीं छोड़ा तब भगवान रुद्रदेव अपना पिनाक धारण कर बृहस्पति के रक्षक बने। इस पर चन्द्र ने ब्रह्मशिर नामक घोर अस्त्र का प्रहार महादेव पर किया परन्तु रुद्र ने क्षण भर में उसका विनाश कर डाला और दोनों का परस्पर घोर युद्ध होने लगा।

ब्रह्मा की मध्यस्थता

यह घोर युद्ध देखकर ब्रह्माजी असमय में ही ब्रह्माण्ड का विनाश हुआ समझकर अत्यन्त भयभीत हुए। तब प्रलयानल के समान भगवान रुद्र को युद्ध से अलग करते हुए तारा को बृहस्पति के अधीन किया। उस समय तारा के गर्भ को देखकर उन्होंने कहा कि इसे भूमि पर गिरा दो। हम में तू दूसरे का बीज धारण नहीं कर सकती। इतना सुनकर तारा ने इषीकास्तम्ब (काश के बोझ) पर जाकर गर्भ का त्याग किया। उस देवता के उत्पन्न होते ही देवताओं का शरीर प्रभाहीन सा हो गया। तब देवताओं ने संशय में पड़कर तारा से पूछा कि सच कहो यह गर्भ किसका है। सोम का अथवा बृहस्पति का"। इतना सुन मारे लज्जा के वह कुछ न बोल सकी तब वह अति तेजस्वी कुमार उसे अभिशापित करने लगा। इतना देख ब्रह्मा जी ने कुमार को मना कर तारा से उस

संशय को पूछा, तारा ने हाथ जोड़कर ब्रह्मा से कहा कि चन्द्र का है। तब प्रजापति और चन्द्र ने बालक का मस्तक सूंघ कर उसका नाम 'बुध' रखा।



काशी में बुध की तपस्या

उक्त घटना के पश्चात् चन्द्र से अनुमति लेकर अति तेजस्वी बुध तपस्या हेतु भगवान विश्वेश्वर द्वारा पालित, अविमुक्त-क्षेत्र काशी धाम में आ पहुँचे। काशी में पहुँचकर उन्होंने अपने नाम से एक लिंग स्थापित किया। उस लिंग के समक्ष हृदय में बालचन्द्र धारी मंगलकारी उमा बिहारी का ध्यान करते हुए दस हजार वर्ष तक बुध ने तपस्या का अनुष्ठान पूर्ण किया। इसके पश्चात् विश्वपति, विश्वभावन, श्री विश्वनाथ उसी बुधेश्वर लिंग से प्रकट हुए।

ज्योतिरूप महेश्वर ने प्रसन्न मन से कहा कि हे महाबुद्धे देवोत्तम बुध, वर की प्रार्थना करो। महासौम्य तुम्हारे इस व्रत से मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हे मैं सब कुछ दूँगा। बुध ने अवर्षण से मुझाते हुए शस्य (धान) के समूहको संजीवन जल के समान उस मेघ निर्दोष वचन को सुनकर ज्यों ही दोनों आँखें खोली त्यों ही अपने सामने उसी लिंग में भगवान् चन्द्रशेखर को देखा। इस प्रकार बुध स्तुति करने लगे।

बुध द्वारा महादेव की स्तुति

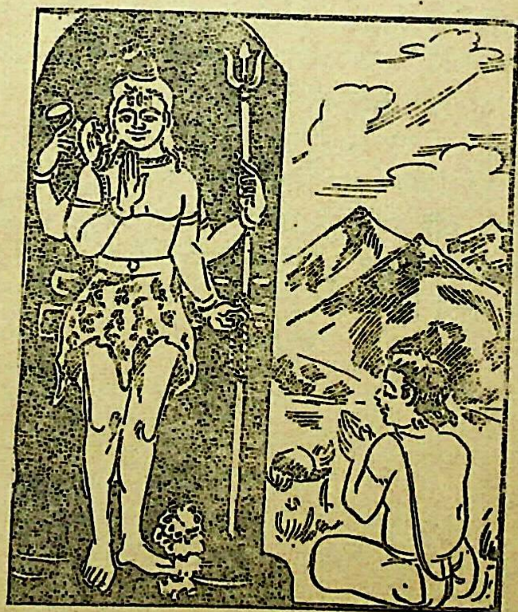
बुध उवाच :—

नमः पूतात्मने तुभ्ययं ज्योतिरूप नमोस्तुते।
विश्वरूपं नमस्तुभ्यं रूपातीताय ते नमः॥
नमः सर्वार्तिनाशाय प्रणतानां शिवात्मने।
सर्वज्ञाय नमस्तुभ्यं सर्वकर्त्रे नमोस्तुते॥
कृपालवे नमस्तुभ्यम् भक्तिगम्या्यते नमः।
फलदात्रे च तपसां तपोरूपाय ते नमः॥
शम्भो शिव शिवाकांत शान्त श्रीकण्ठ शूलभृत्।
शशिशेखर शर्वेश शंकरेश्वर धूर्जटे॥
पिनाकपाणे गिरिश शितिकण्ठ सदाशिव।
महादेव नमस्तुभ्यं देवदेव नमोस्तुते॥
स्तुतिं कर्तुं न जानामि स्तुतिप्रिय महेश्वर।
तव पादाम्बुजद्वन्द्वे निर्द्वंद्वा भक्तिरस्तु मे॥
अयमेव वरो नाथ प्रसन्नोसि यदीश्वर।
नान्यं वरं वृणे त्वत्तः करुणामृतवारिधे॥

हे पवित्र आत्मन्! आपको नमस्कार है, हे ज्योतिरूप!— आपको नमस्कार है, हे विश्वरूप! आपको नमस्कार है, हे रूपा-तीत! आपको नमस्कार है, हे प्रणतजन सर्वार्ति भंजन! आपको नमस्कार है, हे शिवात्मन। सर्वज्ञ! आपको नमस्कार है, हे सर्व-

कारक। आपको नमस्कार है, हे दयालो! आपको नमस्कार हैं, हे भक्तिमात्रलभ्य! आपको नमस्कार, हे तपस्याफल दायक, तपोरूप! आपको नमस्कार है। हे शम्भो! शिव! शिवाकांत! शान्त! श्री कण्ठ! शूलभृत्! शशिशेखर! शर्व! ईश! शंकर! ईश्वर! धूर्जटे! पिनाकपाणे! गिरीश! शितिकंठ! सदाशिव! महादेव! आपको नमस्कार है, हे देव देव! आपको नमस्कार है, हे स्तुति प्रिय! मैं स्तुति करना नहीं जानता। हे महेश्वर! आपके चरण कमल-युगल में मेरी निर्द्वन्द्व भक्ति होवे। हे नाथ। हे ईश्वर! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो यही वरदान दीजिए—हे करुणामृत सागर! मैं आपसे दूसरा वर नहीं चाहता।

महादेव का वरदान



इसके पश्चात् भगवान् महादेव ने बुध की स्तुति से संतुष्ट होकर कहा—'हे रौहिणेय ! (अर्थात् चन्द्र के प्रधान पुत्र होने से रोहिणी आदि के यही पुत्र सम्बोधित हुए) महाभाग ! सौम्य ! मधुर वचनाकर। बुध ! नक्षत्र लोक के ऊपर तुम्हारा लोक होगा, और तुम सब ग्रहों में उत्तम रीति से पूजा प्राप्त करोगे।

हे सौम्य ! तुम्हारा स्थापित यह शिव लिंग सभी लोगोंको बुद्धिदायक होगा, दुर्बुद्धिका हरण करने वाला होगा। और तुम्हारे लोक में लोगोंको निवास देने वाला होगा।

ऐसा वरदान करके भगवान विश्वनाथ उसी लिंग में समा गये। इसके पश्चात् बुध भी महादेव के प्रसाद से अपने इस लोक में आ गये।

विष्णुगणों ने कहा कि 'काशी में बुधेश्वर महादेव का पूजन करने से लब्ध बुद्धि मनुष्य, अगाध संसार-सागर में गिर कर भी गोते नहीं खाता और साधुजन के नेत्रों में चन्द्र के समान कान्तिमान् एवं सुन्दर वदन होकर इस बुध लोक में निवास करता है। इतने में शिवशर्मा का विमान बुध लोक से शुक्र लोक में पहुंच गया।

इस प्रकार श्री स्कन्दपुराण के अन्तर्गत चतुर्थ काशी खण्ड के पूर्वार्द्ध में नक्षत्र की तथा बुधलोक नामक १५ वें अध्याय की कथा का भाषा में वर्णन किया गया।

अध्याय १६

शुक्र-लोक

शुक्रलोक में पहुँचने पर भगवान विष्णु के दोनों गणों ने कहा कि—'हे महाबुद्धे शिवशर्मन। यह शुक्रलोक अद्‌भुत है, यहाँ दैत्य व दानवों के गुरु कवि निवास करते हैं जिसने एक हजार वर्ष तक मात्र 'अतिदु:सह कण धूम' (फूंसी धुंआ) पीकर भगवान श्री महादेव जी से मृत्यु-संजीवनी महाविद्या को प्राप्त किया है। इस अलभ्य एवं दुष्कर विद्या को देवताओं के गुरु श्री बृहस्पति भी नहीं जानते। केवल महादेव, पार्वती, स्वामी कार्तिक और गणेश जी ही इस विद्या को जानते हैं।

मृत्यु सञ्जीवनी

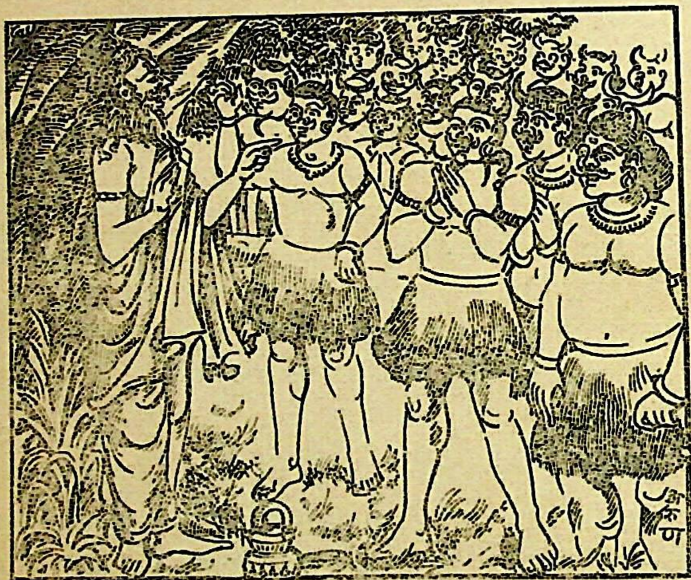
शिवशर्मा को इस पर जिज्ञासा उत्पन्न हुई और पूछा कि वह शुक्र कौन हैं जिनका यह लोक है ? किस कारण से उन्होंने भगवान् महादेव से मृत्यु-संजीवनी विद्या अर्जित की। हे प्रभो ! आप लोग यदि मुझ पर प्रीति रखते हो तो वह पवित्र वर्णन मुझे सुनाइये।

शुक्रदेव

विष्णु-दूत शुक्रदेव की उत्तम कथा का वर्णन करने लगे कि इस कथा को सुनने से किसी की अपघात से मृत्यु नहीं होती और न ही उसे भूत-प्रेत-पिशाचादि सताते हैं।

गणों ने आगे बताया कि अनिर्भेद्य-गिरिव्यूह और वज्रव्यूह के स्वामी, अंधक और अंधकारि के युद्ध में लिप्त होने पर एक बार अन्धक रणभूमि से हटकर अपने रथ पर सवार होकर शुक्र के पास

गया। वहाँ जाकर उसने शुक्र को प्रणाम कर निवेदन करते हुए कहा कि भगवन्! हम सब आपके आश्रय से ही सानुचर रुद्र, उपेन्द्र



आदि को तृणवत् समझते हैं। हे गुरो! आपही की कृपा से देवता लोग हमसे उसी प्रकार डरते हैं जिस प्रकार सिंह से हाथी और गरुड़ से सर्प समूह। हे महाराज आप की कृपा से तापार्दित (गर्मी से सताए हुए) लोग जिस भाँति तालाब में प्रविष्ट होते हैं ठीक उसी प्रकार दैत्य-दानवगण, देवताओं की सेना को कँपाकर अभेद्य वज्रव्यूह में घुसे बैठे हैं।

अन्धक की प्रार्थना

हे ब्राह्मणेन्द्र! हम सब आपको अपना रक्षक पाकर पर्वतों के समान निश्चल बन रण में डटते हैं और निःशंक हो इधर-उधर घूमते

हैं। हम लोग पुत्रकलत्र के सहित विश्वस्त भाव से सुखप्रद आपके दोनों चरणों की दिन रात सेवा किया करते हैं। हे विप्र! शरणागत इन सब की रक्षा करिये। देखिये हुण्ड, तुहुण्ड, कुजम्भ, जम्भ, पाक, विपाक, कार्तस्वन, पाकहारी, चन्द्रदमन, शूर और वीर अमरविदारण इत्यादि को मृत्यु-जेता घोर पराक्रमी प्रमथगण आक्रमण कर हमें उसी प्रकार से गिराते हैं जिस प्रकार द्राविड़ लोग चन्दन की लकड़ी काट कर गिराते हैं। पूर्वकाल में आपने जो तुष धूम पानकर हजार वर्ष तक उत्कृष्ट विद्या प्राप्त की थी उसे आज प्रकट करने का समय आ गया है। दैत्यों को जिलाने पर आपके उस विद्या के प्रभाव को ये प्रमथगण देख लेंगे।

स्थिर बुद्धिवाले भार्गव मुनि, अंधक के वचन सुनकर कुछ हंसे और दानवेश्वर से कहने लगे कि—'हे दानवराज तुमने जो भी कहा सब सत्य है। मैंने इस विद्या का उपार्जन इन्हीं दानवों के लिए किया था। हजार वर्ष तक तक असह्य कणधूम को पानकर मैंने अपने बांधवों को सुख पहुँचाने वाली इस विद्या को भगवान् शिव से सीखा था।

जिस भाँति खेतों में सूखते हुए धान वृष्टि से पुनः हरे-भरे हो जाते हैं उसी प्रकार से रण में भी गिरे दानवों को मैं अपनी विद्या से जीवित कर दूंगा। राजन्! इसी घड़ी तुम दानवों को अक्षत, व्यथाविहीन, सोकर जगा सा देखोगे। दैत्येन्द्र से इतना कहकर 'कवि' एक-एक दैत्य के उद्देश्य से मन्त्र को जपने लगे। गुरुकुल में अध्ययन करने के बाद भूला हुआ वेद ज्ञान पुनः अभ्यास करने पर जिस प्रकार तैयार हो जाता है, या पूर्व विलुप्त जलदगण वर्षा ऋतु में जैसे पूर्णता को प्राप्त होते हैं एवं श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणों को दिया हुआ दान, जिस प्रकार विपत्ति के समय दताओं के फलदानार्थ उठ खड़ा होता हैं वैसे ही दैत्य गण अस्त्रधारण किये हुए उक्त मन्त्र के प्रभाव से पुनः उठ-उठकर खड़े होने लगे।

तुहुण्ड इत्यादि महासुरों को जीवित हुआ देख कर शेष दानव जल पूर्ण मेघों के समान गरजने लगे तथा प्रमथ गण इस दृश्य को देख कर भगवान् महादेव को इसकी सूचना देने के लिए सोचने लगे कि किस प्रकार शुक्र द्वारा मथे हुए दानव जिलाये जा रहे हैं। उस घोर संग्राम में शुक्र का क्रिया कलाप देख कर शिलाद के पुत्र नन्दी भगवान् महादेव के पास सूचना देने गये।

भगवान महेश्वर के सन्निकट पहुंच कर नन्दी ने कहा कि—'हे देव! इन्द्रादि देवताओं से भी दुष्कर कनक के समान शुद्ध रण कर्म हम सब ने जो कुछ रण में किया हैं उसे भार्गव मृत जीवनदाता महामन्त्र की आवृत्ति कर एक एक को पुनः जिला रहे हैं। इस प्रकार वह हमारे रण कौतुक को विफल कर रहे हैं। तुहुण्ड, हुण्ड, कुजंभ, जंभ, विपाक और पाकादि महासुरेन्द्रगण, यमालय से लौट कर आज पुनः प्रमथों को विद्रवित करते घूम रहे हैं। यदि भार्गव इसी प्रकार दैत्यों को बारम्बार जिलाते रहेंगे तो हे महेश! यहाँ पर हम सबका विजय कैसे होगा? गणनाक की सुख शान्ति कैसे होगी।

प्रमथ नायक नन्दी के निवेदन को सुनकर प्रमथाधिराज महेश्वर हँसते हुए कहने लगे कि 'हे नन्दिन्! शीघ्रता से जाओ और जिस प्रकार से बाज पक्षी लावक (लवा) पक्षी को झपट कर पकड़ लेता है ठीक उसी प्रकार तुम उस ब्राह्मणप्रवर भार्गव को दानवों के बीच से पकड़ कर ले आओ।

भगवान् वृषभध्वज के इतना कहते ही वृषसिंहनादी नन्दी गर्जना करने लगे और शीघ्रता से वहाँ पहुँचे जहाँ पर सेना के बीच भृगुवंश प्रदीप शुक्र विराजमान थे। वहाँ पहुँचते ही पाश, खड्ग, वृक्ष, पाषाण और पर्वत आदि हाथ में लिए रक्षक दानवों के बीच

से दैत्यों को विक्षोभित करते हुए बलवान नन्दी उसी प्रकार मुनि को उठा ले गये जैसे सिंह हाथी को। यह दृश्य देखते हुए सभी दानव सिंहनाद की भाँति गरजते हुए नन्दी का पीछा करने लगे।



दानवेन्द्रगण मेघ की वर्षा के समान नन्दी के ऊपर वज्र, शूल, खड्ग, कुठार, बहुत से चक्र, पाषाण और कम्पनास्त्र आदि को बड़े वेग से प्रहार करने लगे।

गणाधिनायक नन्दी शत्रुको देवासुर संग्राम में व्यथित करते हुए अपने मुख से निकली हुई अग्नि से सैकड़ों अस्त्रोंको भस्म कर डाला और उक्त भार्गवको पकड़े हुए महादेव के समक्ष पहुंच गये। पहुँचते ही उन्होंने भगवान से कहा कि 'यही वह शुक्र है'। भगवान महादेव ने पवित्र व्यक्ति द्वारा दिए हुए वस्तु के समान मुनि

शुक्र का ग्रहण कर लिया। अर्थात् बिना कहे सुने फल के समान उन्हे अपने मुख में रखकर उदरस्थ कर लिया (पेट में डाल लिया)। यह दृश्य देखकर सभी दैत्य हा-हा-कार करने लगे। और जिस प्रकार बिना सूण्ड के हाथी, सींग के बिना बैल, शरीर से हीन



जीव संघ, अध्ययन से विमुख ब्राह्मण, निरुद्यमयती, सत्वगुण के बिना, मात्र भाग्य के सहारे व्यवसायी, पति विहीन रमणी लोग, पंख विहीन वाण गण, पुण्य रहित आयु, असच्चरित्र पुरुषका शास्त्रादि के पढ़ने और एक वैभवशक्ति के बिना जिस भाँति सभी क्रिया कलाप निष्फल हो जाते हैं उसी प्रकार से दैत्यगण अपनी जय की आशा से रहित हो गये।

अपने गणोंको उदास देखकर अंधक बोला पराक्रम से नन्दी द्वारा शुक्रको उठा लाने के कारण हम सब ठगे गये। नन्दी ने हम

सबके प्राण धैर्य, वीर्य, गति, कीर्ति, उत्साह और पराक्रम आदि सब कुछ मुनिको छीन कर ले लिया।

अपनेको धिक्कार देते हुए अन्धक ने कहा कि हम अपने कुल-पूज्य, विप्रकुल श्रेष्ठ, सर्व समर्थ, आपत्तिकाल में रक्षा करने वाले एक गुरुको भी जब सुरक्षित नहीं रख सके तो हमे बार-बार धिक्कार है। अब जो होना था सो हुआ धैर्य धारण कर सब लोग युद्ध करते जाओ मैं नन्दी सहित इन सभी प्रमथ गणोंको मारूँगा। आज घोर युद्ध कर इन्द्रादि देवताओंको मार कर भार्गवको ऐसे छुड़ा लाऊंगा जैसे कि योगी लोग जीवको कर्म बन्धन से मुक्त कर देते हैं। यदि वह योगी अपने योगबल से महादेव के शरीर से निकल गये तब तो हमलोगों का अन्त में रक्षण ही होगा।

अन्धक के ये वाक्य सुनकर दानव लोग मेघ के समान गर्जना करने लगे और अपने मरने का निश्चय कर प्रमथगणों पर प्रहार कर उन्हें विह्वल कर दिया। जो बड़े बली कहे जाने वाले अपने स्वामीको रण में छोड़कर चले जाते हैं वे अन्धतमिस्रगृह (नरक) में भोग भोगते हैं। बड़ी ख्याति कर अपयश रूपी तम (अंधकार) से मलिन कर जो व्यक्ति समरांगण से भग्न हो जाते हैं वे इह और परलोक में कभी सुखी नहीं होते। पुनर्जन्म रूपी मल के विनाशक रण क्षेत्र (अस्त्रधारा) रूपी तीर्थ में जिसने स्नान कर लिया उसे दान व तप करने और तीर्थ में स्नान करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। यह बात समझ कर दैत्य लोग डंका पर चोट करने लगे और उसकी ध्वनि से प्रेरित हो कर युद्ध में कूदने लगे तथा प्रथम गणोंको विह्वल करने लगे।

घोर संग्राम

प्रथमगण और दैत्यगण आपस में बाण, तलवार वज्र समूह, कटकंट बोलने वाला शिलायन्त्र, भुशुण्डी, ढेलबाँस, शक्ति, भाला

कुठार, खट्वांग, पट्टिश, लकुट (लकड़ी) और मूशल के द्वारा आघात प्रत्याघात करते हुए घोर मारकाट करने लगे। खींचे जाते धनुषों, गिरते हुए बाणों, भिंदीपाल, भुशुण्डी तथा सिंहनाद का घोर गर्जन होने लगा। युद्ध के डंकों का निनाद, हाथियों के बृंहित (गर्जन) और घोड़ों की हिनहिनाहट से बड़ा कोलाहलसा मच गया। पृथ्वी और आकाश का बीच उक्त अस्त्र शस्त्रों और शत्रुओं के ध्वनि से परिपूर्ण हो गया जो वीरोंको और डरपोकों दोनों के लिए भयावह हो गया था। उनके रोंगटे खड़े होने लगे, उनके कान फटने लगे, ध्वजा-पताका आदि गिरने लगे। घोड़ा, हाथी, रथ आदि बहते हुए रुधिर (खून) से रंगने लगे। सभी प्यास के कारण मूर्छित होने लगे।

अपनी सेनाको प्रमथों द्वारा युद्ध से पीछे भगाये जाते देख स्वयं अन्धक अपने रथ पर चढ़कर प्रमथों का संहार करने लगा। उस समय अन्धक के बाण बज्र के समान प्रमथोंको लगने लगे। जिसके वज्राघात से पर्वतों की नाई और प्रचण्ड वायु वेग से निर्जल मेघ के समान उनकी दशा हो गई। उस समय दूर वा समीप के किसी भी प्रमथको वह नहीं छोड़ता था प्रायः सभीको वेधता गया।

महावली गणेश, कार्तिकेय, नन्दी, सोमनन्दी, नैगमेय, शाख, विशाख आदि अति उग्र गणनायकों ने भी त्रिशूल, शक्ति और बाण समूहको वर्षा की धारा के समान अन्धक पर बरसाने लगे। परिणामतः वह अन्धक एक प्रकार से अन्धक अर्थात् अन्धा सा हो गया। इसके पश्चात् दोनों दल में भारी कोलाहल होने लगा। इस भारी कोलाहलको सुनकर भगवान शिव के उदरस्थ शुक्र बाहर निकलने का मार्ग खोजते-खोजते शिव के पेट के निचले भाग में पाताल सहित उन्होंने सातों लोक को देखा। शुक्र ने उस समय ब्रह्मा, नारायण, इन्द्र, आदित्य और अप्सरा आदिको भी देखा।

एक सौ वर्ष तक भृगु मुनि महादेव की कुक्षि में चारों ओर घूमते रहे। जिस प्रकार पापात्मा पवित्र व्यक्ति के रन्ध्रको नहीं



देख पाता वैसे ही उन्हें बाहर निकलने का छिद्र नहीं दिखाई देता था। इसके पश्चात् भार्गव मुनि शैव योग के द्वारा शुक्र (वीर्य) बनकर बाहर निकल आये और भगवान्‌को प्रणाम किया।

यह देखकर भगवान् शिव ने कहा कि 'हे भृगु नन्दन' तुम जो शुक्र के समान प्रगटे हो सो आज से तुम्हारा नाम शुक्र होगा और तुम मेरे पुत्र हुए। भगवान् नें यह आशिर्वाद देते हुए उन्हें लौट जाने को कहा। उदर से बाहर निकल जाने पर भगवान् शिव बड़े प्रसन्न हुए। भगवान् महादेव के आदेशको सुनकर सूर्य के समान भगवान् शुक्र जिस प्रकार घन-घटा (काले बादल) के बीच चन्द्रमा घुसते हैं उसी भाँति वह भी दैत्यों की सेना में घुस गये। वह दानवी

सेना शुक्र के उदय होने से वैसी ही प्रसन्न हुई जैसे चन्द्रमा के उदय होने से तरंग माला धारण किए समुद्र प्रसन्न हो उछलने लगता है। अन्धकान्तक शिव और अन्धक के युद्ध के बीच इस भाँति मुनि ने शुक्र नाम को प्राप्त किया।

विष्णु गणों ने शिवशर्मा से और अगस्त्य ऋषि अपनी पत्नी लोपामुद्रा से कहने लगे कि शुक्र ने भगवान् शिव की कृपा से मृत संजीवनी नामक विद्या किस प्रकार से प्राप्त की। वह वर्णन अब सुनो।

पूर्वकाल में अण्डज, स्वेदज, उद्भिज, और जरायुज जीवोंको गति देने वाली वाराणसी पुरी में पहुँच कर शुक्र ने एक शिव लिंग स्थापित किया, उसके समीप एक कूप का निर्माण कर भगवान विश्वेश्वर का ध्यान कर बहुत समय तक तप किये।

राजचम्पक, धतूर, कनईल, कमल, मालती, कर्णिकार, कदम्ब, मौलसरी, श्वेतपद्म, वेला, शतपत्री, सिन्दुवार, पलाश, अशोक, कानो, पुन्नाग, नागकेशर, छोटी माधवी, पाटला (गुलाब), बेल चम्पा, नवमल्लिका, विचकिल, कुंद, कुंदारू, मन्दार, बेलपत्र, द्रोण, मैनफल, गुम्मा (वक) ग्रंथिपर्णं, दौना, दमनक, सुरभू, आम का बौर, तुलसी, देवगंधारी, बृहत्पत्री, कुश का अंकुर, तगर, अगस्त्य, सरल, देवदारू, कचनार, कुरुवक, कुरंटक (कौरैया) और दूर्वा के अंकुर आदि पुष्पों तथा पत्रों से एवं अन्य प्रकार के सैकड़ों सहस्त्रों भाँति के पुष्प और दलों से एक-एक करके शुक्र भगवान शिव की पूजा करने लगे।

द्रोण परिमाण (दो सौ पल धान्य भाण्ड जिस में रहे) पंचामृत और सुगन्ध जल आदि से लाखों बार भगवान को स्नान कराया, इत्र लगाया, यक्ष कर्दम और चन्दनादि द्रव्यों कभी उन पर लेप किया। पश्चात शुक्र ने भगवान के समक्ष नृत्य गीत आदि उपहार और

वेदोक्त स्तोत्र पाठ तथा अन्य सहस्त्र नाम आदि के द्वारा शिव की स्तुति किया। इस भाँति शिव ने पाँच हजार वर्ष तक महादेव की आराधना की। इतना करने पर भी जब उसने भगवान शिव को प्रसन्न होते नहीं देखा तो अन्य प्रकार के दुरूह घोर नियम का पालन करने लगे। इन्द्रिय गण के सहित मन के चंचलता रूपी महामल को शिव के प्रति भावना रूपी जल से बारंबार धोया। अपने निर्मल चित्तरूपी रत्न को पिनाकीदेव के लिए अर्पण कर एक हजार वर्ष तक शुक्रने मात्र भूँसी के धुँएं का पान किया।

भगवान प्रगट हुए

इतना करने पर भगवान विश्वनाथ शुक्र पर प्रसन्न होकर साक्षात् दाक्षायणी के पति विरूपाक्ष, सहस्त्रों सूर्य से भी अधिक तेज धारण किये उसी लिंग में प्रकट होकर कहने लगे कि हे तपोनिधे! भार्गव! मैं प्रसन्न हूँ तुम वर माँगो। इस वचन को सुनकर वह अति प्रसन्न होकर मस्तक तक हाथ जोड़े भगवान् भगवान्! की जय-जय करता हुआ संतोष पूर्वक उस अष्ट मूर्ति की स्तुति करने लगा।

शुक्र द्वारा स्तुति

भार्गव उवाच :—

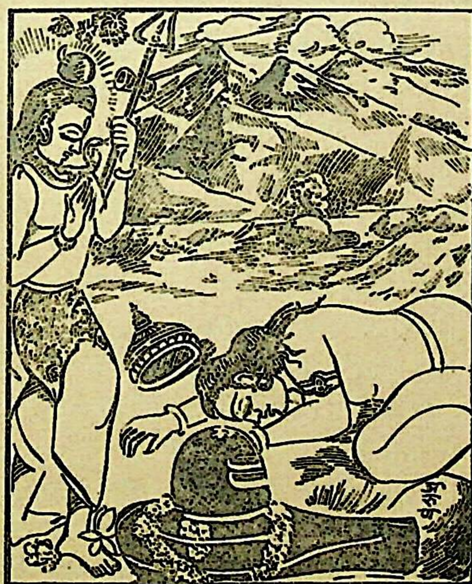
त्वं प्रभाभिराभिरभिभूय तमः समस्तमस्तं नयस्यभिमतानि निशाचराणाम्।
देदीप्यसे दिनमणे गगनेहिताय, लोकत्रयस्य जगदीश्वर तन्नमस्ते॥
लोकेतिवेलमतिवेल महामहोर्भिर्निर्मासि 'कौमुदमुदं च समुत्समुद्रम्।
विद्राविताखिलतमाः सुतमोऽहिमांशो पीयूषपूरपरिपूरित तन्नमस्ते॥
त्वंपावने पथि सदागतिरस्युपास्यः कस्त्वां विना भुवनजीवन जीवतीह।
स्तब्धप्रभंजनविवर्धित सर्वजन्तो संतोषिताहिकुल सर्वग तन्नमस्ते॥
विश्वैकपावक न तावकपावकैकशक्तेर्ऋतेऽमृतवतो दिव्यकार्यम्।
प्राणित्यदो जगदहो जगदंतरात्मंस्तत्पावकप्रतिपदंशमदन्नमस्ते॥

पानीयरूप परमेश जगत्पवित्र चित्रं विचित्र सुचरित्र करोषिनूनम् ।
विश्वम् पवित्रममलम् किलं विश्वनाथ पानावगाह नत एतदतो नतोस्मि ॥
आकाशरूप बहिरंतरुतावकाश दानाद्विकश्वरमिहेश्वर विश्वमेतत् ।
त्वत्त: सदा सदय संश्वसितिस्वभावात्संकोचमेति भवतोस्मि नतस्ततस्त्वाम् ॥
विश्वम्भरात्मकविभर्ति विभोऽत्र विश्वं को विश्वनाथ भववोन्यतमस्तमोरे ।
तत्वांविनान शमिनंाहिमजाहि भूषस्तव्योऽपर: पर पर प्रणतस्तस्त्वाम् ॥
आत्मस्वरूप तवरूप परम्पराभिराभिस्ततं हर चराचर रूपमेतत् ।
सर्वांतरात्म निलय प्रति रूपरूप, नित्यम् नतोस्मि परमात्मतनोऽष्टमूर्ते ॥
इत्यष्टमूर्तिभिरिमाभिरुमाभि वंद्य वंद्याति वंद्य भव विश्वजनीनमूर्ते ।
एतत्ततं सुविततं प्रणतप्रणीत सर्वार्थ सार्थं परमार्थं ततो नतोस्मि ॥

भगवान् की स्तुति में भृगुनन्दन ने कहा कि :—

हे जगदीश्वर ! आपही अपने इस प्रभाजाल से समस्त अंधेरे को दूर कर निशाचरों के सभी अभीप्सित वस्तुओं को ध्वस्त कर देते हैं और इस प्रकार तीनों भुवन के हित के लिए दिनमणि हो अर्थात् सूर्य के समान आकश मण्डल में देदीप्यमान होते हैं अतएव आपको प्रणाम है। हे सुधा समूह से परिपूर्ण हिमांशु (चन्द्र) रूप ! आपही संसार में सभी अंधकार का भेदन कर असीमित अपने महातेज के द्वारा कुमुद को प्रमोद और समुद्र को आमोद (हर्ष) उत्पन्न करते हैं। आप अति शोभायुक्त हैं अत: आपको बारम्बर नमस्कार है। हे भुवन जीवन ! आपही सदा गति (वायु) रूप से वेदमार्ग में उपासनीय हैं, अत: संसार में भला आपके बिना कौन जी सकता है। हे अनम्र प्रभंजन ! हे सर्वजन्तु विवर्धक। हे सर्पकुल के सन्तोषक ! आपको प्रणाम है। हे भुवनैक पावन ! अमृत ! जगदन्तरात्मन् ! केवल आपकी पावन (पाचक) शक्ति के बिना देवता-इन्द्रिय-पंचभूतमय जगत रक्षा को नहीं पाता है। हे पावक रूप ! शान्ति के दाता ! आपको प्रतिक्षण प्रणाम है। हे जगत्पवित्र !

विचित्र और सुन्दर चरित्र ! पानीय स्वरूप ! परमेश्वर ! विश्वनाथ आप ही इस अद्‌भुत संसार को पान और स्नान के द्वारा बाह्याभ्यंतर (भीतर तथा बाहर) को निश्चित रूप से पवित्र एवं निर्मल बना देते हैं अतः आपके समक्ष मैं नतमस्तक हूँ। हे सदय ईश्वर ! आकाश रूपिन् ! आपही अन्तर में और बाहर में लोगों को अवकाश देते हैं। इसी से यह ब्रह्माण्ड प्रफुल्लित रहता है। आपही के सहारे यह श्वाँस लेता है और आपही के स्वभाव के कारण यह सङ्कोच को प्राप्त होता है अतएव आपको नमस्कार है। हे तम



के विनाशक ! विश्वम्भरात्मक (पृथ्वीरूप) प्रभो ! विश्वनाथ ! इस विश्व में सभी का भरण-पोषण भला आपसे भिन्न और कौन कर सकता है। हे गौरीविभूषित ! भुजग भूषण ! आपके अतिरिक्त

भला और कौन स्तुति योग्य है। हे परात्पर ! आपको मैं नमस्कार करता हूँ। हे आत्मस्वरूप ! सर्वान्तरात्मनिलय ! हर ! आपको मैं नित्य प्रणाम करता हूँ। हे पार्वती के अभिनन्दनीय ! वन्द्य के भी वन्द्य ! सर्वजन हित मूर्ते ! भक्तजनों को सुलभ ! भव ! आप सभी अर्थ समूहों में परमार्थ हैं, आपकी इन अष्ट मूर्त्तियों से समस्त ब्रह्माण्ड व्याप्त हैं, अतएव आपको नमस्कार है।

भार्गव इस प्रकार 'अष्टमूर्त्यष्टक स्तोत्र के माध्यम से महादेव की अभिलाषारूपी स्तुति कर भूमि पर मस्तक नवाय' बारम्बार साष्टाङ्ग दण्डवत कर प्रणाम करने लगे। बड़े तेजस्वी भार्गव की स्तुति सुनकर महादेव ने उस प्रणत ब्राह्मण को अपने दोनों हाथों से पकड़ कर पृथ्वी पर से उठाया।

भगवान् का वरदान

भगवान् विश्वनाथ ने शुक्र को वरदान देते हुए कहा कि—तुम्हारी इस उग्र तपस्या, लिंग स्थापन, पुण्य लिंग की आराधना, स्थिर पवित्र चित्तरूपी रत्न के उपहार दान और इस अविमुक्त महाक्षेत्र में पवित्र आचरण के द्वारा तुमको मैं अपने दोनों पुत्रों (कार्त्तिकेय और गणेश) के समान देखता हूँ अतः तुम्हारे लिए मेरे पास कुछ भी अदेय नहीं है। तुम इसी शरीर से मेरे उदररूप कुहर (गुफा) में प्रविष्ट होकर पुरुषेन्द्रिय मार्ग से बाहर होकर मेरे पुत्रभाव को प्राप्त होगे। पार्षदों को भी दुष्प्राप्य एक वरदान हम तुम्हें देते हैं कि जिसे मैंने ब्रह्मा और विष्णु से भी गुप्त रखा है। बड़े तपोबल से मैंने 'मृत सञ्जीवनी' नामक 'निर्मल विद्या को बनाया है। हे महापवित्र' उसे मैं आज तुम्हें देता हूँ। हे पवित्र तपोनिधे इस विद्या को ग्रहण करने की तुम्हारे में योग्यता है। हे विश्वेश्वर श्रेष्ठ ! जिस-जिसके उद्देश्य से इस मन्त्र रूपा विद्या को संयतभाव से तुम जप की आवृत्ति करोगे वह अवश्य ही जी जाएगा।

आकाश मण्डल में तुम्हारा तेज, सूर्य, अग्नि और तारागण को अतिक्रमण कर अत्यन्त देदीप्यमान होगा। अतएव तुम सब ग्रहों में श्रेष्ठ हो जावोगे। तुम्हें सम्मुख कर जो नर वा नारी यात्रा करेंगे और उनपर तुम्हारी दृष्टि पड़ जाने से उनके सभी कार्य बन जायेंगे। हे सुव्रत! तुम्हारेउदय हो जाने पर लोक में मनुष्यों के विवाहादिक समग्र शुभ कर्म-धर्म करने से अवश्य सफल होंगे। सभी मन्द तिथियाँ तुम्हारे संयोग से उत्तम फल देने वाली हो जायेंगी और तुम्हारे भक्तगण बहुवीर्य और बहु-सन्तान वाले होंगे।

भगवान् ने आगे कहा कि तुम्हारे द्वारा स्थापित इस शुक्रेश्वर लिंग की पूजा जो मनुष्य करेगा उसे सर्वत्र सिद्धि प्राप्त होगी। जो लोग एक वर्ष तक प्रत्येक शुक्रवार को नक्तव्रत करके उसी दिन शुक्रकूप में सर्वविध जल क्रियाओं को करेंगे और शुक्रेश्वर का पूजन करेंगे वे नर निश्चय ही अवन्ध्यवीर्य, पुण्यवान, बड़े वीर्य-शाली, और पुरुषत्व, तथा सौभाग्य से पूर्ण होंगे। उन सबको कोई विघ्न ही नहीं उपस्थित होगा और अन्त में वे सुख पूर्वक शुक्रलोक में निवास करेंगे। इन वरों को देकर भगवान् विश्वनाथ उसी लिङ्ग में लीन हो गये।

विष्णुगणों ने कहा कि "जो लोग शुक्रेश्वर के भक्त हैं वे ही इस शुक्रलोक में वास करते हैं। हे परन्तप! विश्वेश्वर के दक्षिण शुक्रेश्वर लिङ्ग विद्यमान है जिसके दर्शन मात्र से मनुष्य शुक्रलोक में आदर सहित निवास करता है। हे महामते! यह शुक्रलोक की स्थिति हमने आप से कही है।"

अगस्त्य ऋषि ने अपनी पत्नी से कहा कि हे सुव्रते! सहधर्मिणी! वह शिवशर्मा इस भाँति शुक्रलोक की कथा सुनते-सुनते मङ्गल लोक को देखने लगा।

इस प्रकार स्कन्द पुराण के चतुर्थ काशी खण्ड में शुक्रलोक की कथा नामक १६वें अध्याय के वर्णन का भाषा अनुवाद किया गया।

अध्याय १७

अंगारक (मंगल) लोक, बृहस्पति-लोक और शनिलोक

शिवशर्मा ने विष्णुदूतों से कहा कि हे देव ! मैंने आपसे शुक्र के सम्बन्ध में उत्तम कथाको सुना, जिसके सुनने से हमारे दोनों कान अतिपवित्र हो गये हैं। अब यह बताइये कि शोक का हरण करने वाला यह कौन-सा लोक है ? इसका अधिपति कौन पुण्यवान है ? आप लोगों के मुखारविन्द से निकले ये शब्द सुनकर मैं अपने कानोंको पवित्र करता अवश्य हूँ परन्तु तृप्ति नहीं हो रही है।

विष्णुदूतों ने बताया कि यह लोहितांग मंगल का लोक है। यह किस प्रकार से भूमि के पुत्र हुए वह उत्तम वृतान्त भी मैं आपको बता रहा हूँ। ध्यान से सुनो :—

अंगारक की उत्पत्ति

पूर्वकाल में दाक्षायणी (सती) देवी के वियोग के पश्चात् तपस्यारत भगवान शंकर के मस्तक से एक बूँद स्वेद (पसीना) चूकर भूमिपर गिर पड़ा। उसी स्वेद के द्वारा पृथ्वी तल से लोहितांग नामक एक कुमार उत्पन्न हुआ और स्वयं धरित्री (पृथ्वी) ने धात्री (दाई) रूप में उसका लालन-पालन किया। इसी कारण से लोहितांगने "भौम या माहेय" नाम से ख्याति प्राप्त की। इससे पूर्व इस लोहितांग ने शिवपुरी (काशी) में घोर तप किया था।

शिवपुरी की महिमा

शिवपुरी में संसार का हित करने वाली असी और वरणा नदियाँ उत्तर वाहिनी गंगा में मिलती हैं, सर्वत्र व्याप्त रहते हुए भी भगवान् विश्वनाथ उस काशीपुरी में मृत्यु होने पर समस्त जीवों को स्वयं मुक्ति देते हैं। वहाँ मरने पर सभी देहधारी अमृत-पदको प्राप्त करते हैं। यह वही अविमुक्त-क्षेत्र है जहाँ पर योग, साधना या व्रत आदि किये बिना भी शरीर त्यागने पर पुनः कभी शरीर धारण नहीं करना पड़ता। उसी काशी पुरी के पाँच मुद्र नामक महापीठ में इस लोहितांग ने कंबल और अश्वतर नागों के उत्तर में 'अंगारकेश्वर' लिंग की स्थापना कर तब तक तपस्या की ज़ब तक कि उनके शरीर से अंगारा (अग्नि) के समान तेज नहीं निकला। इसी कारण से उन्हें अंगारक कहा जाता है। महादेव ने उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर उन्हें 'महाग्रह' की उपाधि से विभूषित किया।

मंगलवारी चतुर्थी की महिमा

जो मनुष्य मंगलवारी चतुर्थीको परम पवित्र उत्तर वाहिनी गंगामें स्नानकर अंगारकेश्वर की पूजा कर उन्हें प्रणाम करते हैं, उन्हें किसी स्थान पर कभी कोई ग्रह नहीं सताता। कालको जानने वाले पण्डित जन चतुर्थी-युक्त मंगलवारको ग्रहण के समान पुण्यपर्व मानते हैं उसदिन दान, हवन, जप आदि जो भी किया जाता है वह अक्षय रहता है।

जो लोग अंगारक चतुर्थी पर्व में श्रद्धा पूर्वक श्राद्ध करते हैं उनके पितृगण इसी एक श्राद्ध से १२ वर्ष तक तृप्त रहते हैं। एक समय इसी अंगारक चतुर्थी में गणेश्वर उत्पन्न हुए थे। यही कारण है कि यह पर्व पुण्य और समृद्धि को देने वाला होता है।

इस अंगारकी चतुर्थी पर्व के दिन जो भक्त व्रत रह कर गणनायक की पूजा कर गणेश जी के निमित्त कुछ दान करता है तो उसे कभी कोई विघ्न नहीं सताता।

वाराणसी स्थित अंगारकेश्वर के भक्तगण ही सर्वसम्मति सम्पन्न होकर इस अंगारक (मंगल) लोक के निवासी होते हैं।

अगस्त्य ऋषि इस प्रकार मंगल लोक का वर्णन कर आगे के लोक का वर्णन अपनी पत्नी लोपामुद्रा से कहने लगे। उन्होंने बताया कि मंगल लोक की कथा का वर्णन करते-करते विष्णु दूत शिवशर्मा के साथ बृहस्पति लोक के समीप पहुंच गये।

बृहस्पतिलोक

उस पुरीको देखते ही शिवशर्मा ने नेत्रोंको सुख देने वाली आचार्यवर्य देवगुरु बृहस्पति के लोक के सम्वन्ध में अपनी जिज्ञासा प्रकट करते हुए पूछा कि यह किसका लोक है।

इस पर विष्णु के दोनों पार्षदों ने बताया कि हे सखे! तुमसे हम कुछ भी नहीं छिपायेंगे। इस प्रसंगको सुखपूर्वक सुनकर मार्ग जनित पीड़ा का हरण करो।

एक समय तीनों लोक के रचयिता ब्रह्मा जी ने मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा आदि सात मानस पुत्रों को उत्पन्न किया था जो ब्रह्मा जी की सृष्टि को चलाने में अग्रसर हुए। अङ्गिरा के पुत्र आङ्गिरस हुए जो देवताओ में उत्तम कहे गये। वह आङ्गिरस बुद्धि में सभी देवताओं में प्रधान थे। इतना ही नहीं वह शान्त, जितेन्द्रिय, क्रोधरहित, मीठे वचन बोलने वाले, निर्मल मन वाले, वेद और वेदार्थ के तत्व को जानने वाले, चौंसठ कलाओं में कुशल, अज्ञान-रूपी मल से रहित, समस्त शास्त्रों के पारदर्शी, नीति वेत्ताओं में अग्रगण्य, हितोपदेशक, सर्वदा हितकारी होकर अहित को समाप्त करने वाले, रूपवान, शीलवान, गुणवान, देश-काल का ज्ञान रखने

वाले, समस्त शुभ लक्षणों से सम्पन्न, गुरुवत्सल, दिव्य तेजस्वी, और महातपस्वी भी थे।

आङ्गिरस ने तापसी वृत्ति धारण कर काशी में एक बड़ा शिवलिङ्ग स्थापित कर एकाग्रचित्त से ६ हजार वर्ष तक घोर तप किया। इनकी इस उग्रतपस्या से प्रसन्न होकर भूतभावन भगवान विश्वनाथ उसी लिंग से प्रगट होकर बोले कि मैं तुम्हारी इस तपस्या से प्रसन्न हूँ। अपने मन की अभिलाषा प्रगट कर इच्छित वर माँगो।

वायव्य स्तोत्र

आंगिरस भगवान शम्भु का दर्शन पाकर इस प्रकार स्तुति करने लगे।

आंगिरस उवाच :—

जय शंकर शान्त शशांकरुचे रुचिरार्थद सर्वद सर्वशुचे।
शुचिदत्तगृहीतमहोपहृते हृतभक्तजनोद्धततापतते ॥
ततसर्वहृदम्बर वरद न ते नतवृजिनमहावनदाहकृते।
कृतविविधचरित्रतनो सुतनोऽतनुविशिखविशोषण धैर्यनिधे ॥
निधनादिविवर्जितकृतनतिकृत् कृतविहितमनोरथ पन्नगभृत्।
नगभर्तृसुतार्पितवामवपुः स्ववपुःपरिपूरितसर्वजगत् ॥
त्रिजगन्मयरूप विरूप सुदृक् दृगुदंचनकुंचनकृतहुतभुक्।
भव भूतपते प्रमथैकपते पतितेष्वपि दत्तकरप्रसृते ॥
प्रसृताखिलभूतलसंवरण प्रणवध्वनिसौध सुधांशुधर।
धरराजकुमारिकयापरमा परितः परितुष्ट नतोस्मि शिव ॥
शिव देव गिरीश महेश विभो विभवप्रद गिरिश शिवेश मृड।
मृडयोडुपतिध्र जगत्त्रितयं कृतयंत्रणभक्तिविघातकृताम् ॥
न कृतांतत एष बिभेमि हर प्रहराशु महाघममोघमते।
नमतांतरमन्यदवैमि शिवं शिवपादनतेः प्रणतोस्मि ततः ॥

वितते‍ऽत्र जगत्यखिलेऽघहरं हरतोषणमेव परं गुणवत् ।
गुणहीनमहीनमहावलयं प्रलयांतकमीश नतोस्मि ततः ॥
इति स्तुत्वा महादेवं विररामांगिरःसुतः ।
व्यतरच्च महेशानः स्तुत्या तुष्टो वरान् बहून् ॥

हे शङ्कर ! हे शान्त ! हे चन्द्रप्रभ ! हे ईप्सितार्थप्रद ! हे शर्व ! चारों पुरुषार्थ के दाता ! हे सर्वशुचे ! आप पवित्र लोगों द्वारा दिये गये उपहार के ग्रहण करने वाले हैं ! आप भक्तजनों के सन्ताप का नाश करने वाले हैं ! अतः आपकी जय हो।

आप सभी के हृदयाकाश में व्याप्त रहते हैं और प्रणत (भक्त) जनों के पापरूपी महावन को भस्म करने वाले हैं, आप विविध शरीर धारण करने वाले हैं तथा सुन्दर शरीर भी धारण करने वाले हैं। हे धैर्य के निधि ! आपही अनंग (कामदेव) के बाण के शोपक हैं आपकी जय हो।

आप दुखियों के दुःख को दूर कर देते हैं और जिस किसी का जो कोई मनोरथ होता है उसे आप पूर्ण करते हैं। हे सर्पधर ! आपने अपने शरीर का बाम भाग भगवती गिरिजा देवी को समर्पित कर दिया है और आपही अपनी अष्टमूर्ति के द्वारा संसार को सर्व प्रकार से परिपूर्ण किये रहते हैं अस्तु आपकी जय हो।

हे त्रिजगन्मय ! हे विरूप ! हे सुन्दर नेत्रधारी ! आपही अपना तृतीय नेत्र खोल कर प्रलयाग्नि को उत्पन्न करने वाले हैं। हे भव ! हे भूतपते ! हे प्रमथ प्रधानपते ! आप पतितों का अपने वरदहस्त से उद्धार करते हैं अतः आपकी जय हो।

हे सकल भूतल में व्यापक ! प्रणव मन्त्र की ध्वनि ही आपका आश्रय (सौंध) है, हे चन्द्रधर ! चिद्रूपा (परमा) गिरिराज-कुमारी अपनी सेवा से आपको सदा सन्तुष्ट किये रहती हैं, हे कल्याण के स्वरूप ! आपको मैं प्रणाम करता हूँ।

हे शिव ! हे देव ! ,हे गिरीश ! हे महेश ! हे विभो ! हे विभव-प्रदाता ! हे कैलाशशायिन् ! हे पार्वतीपते ! हे मृड ! आप भक्ति-विघातकों (काम-क्रोध आदि) को यातना देने वाले हैं। हे तारापतिधारिन् ! आप तीनों लोक को सुखी करें।

हे अमोघमते ! मैं यमराज से भी नहीं डरता, हे हर ! आप शीघ्र ही मेरे पापपुंजों (महापाप) का हरण करें, मैं महादेव के चरणों के अतिरिक्त अन्य को मंगल नहीं मानता अतएव आपको प्रणाम करता हूँ।

इस विस्तृत संसार में भगवान शिव को प्रसन्न करना ही अघनाशक और मुख्य गुण है, अतः हे ईश ! निर्गुण ईश्वर ! नागराज के महाकङ्कणधारी ! प्रलयकाल में सर्व का संहार करने वाले ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

अङ्गिरा के पुत्र इस प्रकार महादेव की स्तुति कर चुप हो गये और महेश्वर ने भी आङ्गिरस की स्तुति से सन्तुष्ट होकर उन्हें बहुत से वरदान दिये।

श्री महादेव जी वर देते हुए कहने लगे कि इस बृहत् तपस्या के प्रभाव से तुम बृहतों अर्थात् बड़ों (इन्द्रादि देवों) के भी पति 'श्रेष्ठ-गुरु' होवो और इस कारण से ग्रहों के मध्य (रवि, सोम, मंगल, बुध के बाद और, शनि राहु-केतु से पूर्व, बीच में) बृहस्पति नाम से पूजनीय होगे।

तुम्हारे द्वारा स्थापित इस लिङ्ग की नित्य पूजा करने के प्रभाव से तुम मेरे जीवस्वरूप हो गये हो। इसी से तीनों लोक में 'जीव' नाम से विख्यात होवोगे। प्रपञ्च रहित होकर तुमने वाक् प्रपञ्च (शब्दों) से मेरी स्तुति की है अतः इस वाक् प्रपञ्च के अधिपति तुम वाचस्पति नाम से भी विख्यात होगे।

तुम्हारे द्वारा किये गये इस स्तोत्र का तीन वर्ष तक तीनों समय जो पाठ करेगा अथवा सुनेगा निश्चित ही उसकी वाणी

संस्कृत अर्थात शुद्ध हो जाती है। जो कोई इस वायव्य स्तोत्र को प्रतिदिन पढ़ेगा वह सदा बुद्धिमान बना रहेगा। बड़े से बड़ा काम आने पर भी वह बुद्धि से कार्य कर लेगा। मेरे समीप इस स्तोत्र का पाठ करने वाले की वृत्ति कभी भी नीच कर्म की ओर नहीं लगती। इस स्तोत्र का पाठ करने वाला प्राणी कभी ग्रहों की पीड़ा से ग्रसित नहीं होगा एतदर्थ यह स्तोत्र मेरे समक्ष पढ़ना चाहिए। जो कोई तुम्हारे द्वारा प्रतिष्ठापित इस लिङ्ग की पूजा करेगा और इस स्तुति का पाठ करेगा उसकी मनोकामना अवश्य पूर्ण होगी। भगवान शिव ने आङ्गिरस को ये सब वरदान दिये और इन्द्रादि देवगण, यक्ष, किन्नर, भुजुङ्ग आदि के सहित ब्रह्मा जी का आह्वान किया।

महादेव ने सब को प्रस्तुत देखकर ब्रह्मा जी से कहा कि 'हे विधे ! निज गुणों ही के द्वारा गुरु (श्रेष्ठ) इस वाचस्पति मुनि को मेरे कथनानुसार समस्त देवताओं का गुरु बनाओ और इन्हें देवाचार्य के पद पर अभिषिक्त करो। मेरा प्रीतिपाश यह मुनि अत्यन्त-धिष्णाधिपति (बुद्धीश्वर) होगा।

ब्रह्मा द्वारा अभिषेक

ब्रह्मा जी ने महादेव जी की आज्ञा के अनुसार उसी क्षण अङ्गिरा के पुत्र को अपने हाथों तिलक करके देवताओं का आचार्य बना दिया। यह दृश्य देखकर देवता लोग दुन्दुभि बजाने लगे, अप्सराएं मंगलगान एवं नृत्य करने लगीं। सभी देवता प्रसन्न चित्त हो अपने गुरु की पूजा करने लगे, वशिष्ठ आदि ऋषियों ने मन्त्रपूत जल से बृहस्पति जी का अभिषेक किया।

इतना होने के पश्चात् भगवान विश्वनाथ ने बृहस्पति जी को और भी वर देते हुए कहा कि हे धर्मात्मन ! कुल नन्दन ! देवपूज्य आङ्गिरस ! सुनो, तुम्हारे द्वारा स्थापित यह लिङ्ग बृहस्पतीश्वर



नाम से प्रसिद्ध होगा। पुष्यनक्षत्र-युक्त बृहस्पतिवार को जो मनुष्य इस लिङ्ग की पूजा व आराधन करेंगे वे सिद्धि को प्राप्त होंगे।

भगवान विश्वनाथ ने आगे कहा कि 'कलियुग' में इस लिंगको मैं गुप्त रखूंगा कारण यह है कि इस लिंग के दर्शन मात्र से प्रतिभा प्राप्त होती है। चन्द्रेश्वर के दक्षिण और वीरेश्वर के नैऋत्य कोण में अवस्थित इस 'बृहस्पतीश्वर' लिंग के पूजन करने से मनुष्यको बृहस्पति लोक की प्राप्ति होगी। छः महीने तक इस लिंग की उपासना करने से गुरुपत्नीगमन जैसे जघन्य पाप से मनुष्यको उसी भाँति छुटकारा मिलेगा जैसे सूर्योदय होते ही अन्धकार को। अतः इस महापातक विनाशक लिंग के फलको गुप्त रखना चाहिए।

देवाधिदेव महादेव इस प्रकार बृहस्पति जी को वरदान देकर उसी लिंग में समाविष्ट हो गये।

विष्णु दूतों ने आगे बताया कि बृहस्पति सभी उपस्थित देवता वृन्दको ससम्मान विदाकर भगवान विष्णु की आज्ञा से इस लोक (बृहस्पति लोक) में निवास करने लगे।

शनि लोक

अगस्त्य ऋषि ने कहा कि हे लोपामुद्रे! शिव शर्मा जी उक्त कथा सुनते-सुनते प्रभामण्डल से मण्डित 'शनिलोक' पहुंच गये। हे शुचिस्मते! शिव शर्मा के पूछने पर शनि लोक का वृत्तान्त विष्णुदूतों ने सविस्तार इस प्रकार से कहना प्रारम्भ कर दिया।

दोनों गणों ने कहा कि हे द्विज! मरीचितनय! कश्यप ऋषि ने दाक्षायणी के गर्भ से सूर्यको उत्पन्न किया और इस प्रकार से प्रजापति की कन्या संज्ञा उनको भार्या हुई। सुदीप्त तप से समन्वित रूप-यौवनशालिनी संज्ञा देवी पति को अत्यन्त प्रिय बन गयीं। वह सूर्य मण्डल का तेज और आदित्यका उष्णरूप अपने शरीर से तो ग्रहण करती रही परन्तु उसका देह धीरे-धीरे कान्ति विहीन

होने लगा। उसके अण्ड स्थित बालक कहीं मृत्युको प्राप्त न हो जाय उसे भय बना रहा। कश्यप ने बड़े स्नेह के साथ कहा कि तब ही से सूर्यका नाम मार्तण्ड पड़ा। तीक्ष्णकिरण धारी उस मार्तण्ड का तेज जिसके द्वारा तीनों लोक अति तापित होते रहते हैं। संज्ञादेवीको असह्य होने लगा।

मनु, यमराज व यमुना की उत्पत्ति

हे ब्राह्मण सुनो! तेजों के निधि भगवान आदित्य (सूर्य) ने उस संज्ञा देवी के गर्भ से तीन सन्तान उत्पन्न किये जिनमें दो प्रजापति वैवस्वत मनु और यमराज तथा एक यमुना नामक क़न्या



उत्पन्न हुई। जब वह संज्ञादेवी सूर्य के तेजोमय रूपको सहन न्हीं कर सकी तब उसने अपने ही मायामयी सवर्ण छाया का निर्माण

किया। उसकी छाया हाथ जोड़ कर प्रणाम कर कहने लगी कि हे देवी ! मैं आपकी आज्ञाकारिणी हूँ। मेरे लिए आपकी क्या आज्ञा है।

संज्ञाने कहा कि हे मेरे समान सवर्णे सुन्दरी ! सुनो मैं अपने पिता विश्वकर्मा के गृहको जाऊँगी और तुम निःशंक होकर इस गृह में वास करो। मनु, यम और यमुनाको अपने ही बच्चे समझकर तुम्हें इन्हें देखना है। इन्हें बच्चों की दृष्टि से देखना है। प्रतिमूर्त्ति ने कहा कि देवी जब तब तक मेरे शिरका बाल न पकड़ा जायेगा। अथवा शाप की सम्भावना न होगी। तब तक मैं आपका यह भेद किसी से न कहूँगी। आप सुखपूर्वक गमन करें। इस प्रकार से छाया का उत्तर पाकर संज्ञादेवी अपने पिता विश्वकर्मा के पास चली गई। वहाँ जाकर पिता को प्रणाम किया और कहने लगी कि हे पिता ! मैं महात्मा तेजोनिधि आर्यपुत्र काश्यप के तीव्र वेग को सहन नहीं कर सकती हूँ।" उसकी बात सुनकर पिता ने उसे बहुत कुछ कहकर पुनः पति के यहाँ ही जाने को कहा। पिता के वचन सुन कर वह घोर चिन्ता में निमग्न हो गयी और सोचने लगी कि 'स्त्रियों की चेष्टा को धिक्कार है इस प्रकार वह अपनी तथा स्त्री जन्म की बड़ी निन्दा करने लगी कि स्त्रियों को कभी स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त होती। अतः ऐसे पराधीन जीवन को धिक्कार है क्योंकि लड़कपन में पिता, युवावस्था में पति और बुढ़ापे में पुत्र का भय बना ही रहता है। ओः ! बिना विचारे ही मैंने मूर्खतावश अपने स्वामी को छोड़ा और पति ने भी अभी मुझे नहीं जाना है, यदि अभीं भी मैं पति के यहाँ चली जाऊँ तो वहाँ पर परिपूर्ण मनोरथ सवर्णा विद्यमान ही हैं और यदि पिता के तिरस्कार करने पर भी मैं यहीं रह जाऊँ तब तो बड़े प्रचण्ड चण्डांशु (सूर्य) मेरे माता-पिता पर भयङ्कर क्रोध करेंगे, अहो ! लोग जैसा कहते हैं वह यही है। आज

मुझे उस कहावत का स्पष्ट आभास और अनुभव हो गया कि अपने हाथ ही अपने पाँव में मैंने कुल्हाड़ी मारी। मूर्खतावश पतिगृह तो छूटा ही और अब पिता के घर में भी रहने से कुशल नहीं है। सुन्दर युवावस्था, त्रिलोकाकांक्षित रूप, सभी का लोभनीय स्त्रीत्व, अत्यन्त निर्मल कुल और वैसे ही सर्वज्ञाता, लोकचक्षु तमोविनाशक समग्र कर्मों के साक्षी, सर्वस्वरूप और सर्वत्रगामी मेरे पतिदेव हैं फिर मेरा कल्याण किस प्रकार से होगा वह अनिन्दिता संज्ञा इसी भांति चिन्ता करती हुई तपस्या करने के लिए, बड़वा घोड़ी रूप धारण करके चली गयी। सूखे तृण (घास) को चरती हुई वह उत्तर कुरु देश में पहुँची और हृदय में पति को रखकर इसी विचार से घोर तपस्या करने लगी कि तपस्या के बल से ही पति के उस तेज को सह सकूँगी।

इधर वहाँ सूर्य ने उसी सवर्णा छाया ही को संज्ञा समझ उसके गर्भ से अति उत्तम आठवें मनुसावर्णी, दूसरे शनैश्चर और तीसरी भद्रा कन्या को उत्पन्न किया। छाया अपने इन लड़कों पर जैसा स्नेह करती थी वैसा प्रेम उन पूर्व के तीनों पर नहीं रखती थी चाहे इसे सवतिया डाह समझा जाय अथवा स्त्रीस्वभाव। पूर्व लड़कों में ज्येष्ठ मनु ने तो वह सब सह लिया परन्तु छोटे यम ने भोजन, भूषण, लालन-पालन आदि में सावर्णी से उत्पन्न अपने से छोटों की अधिकता देखकर एक दिन लड़कपन अथवा भवितव्यतावश (होनहारवश) रोष में आकर संज्ञा की सरूपिणी छाया को पाँव से मार तर्जन किया। तब तो सावर्णी की माता ने क्रोधित हो यम को शाप दे दिया।"

यम को शाप

माता ने यम को शाप देते हुये कहा कि "मुझे मारने के लिए तेरा जो पांव उठा है वह गिरजावे"।

माता के शाप भय से डर कर यम ने जाकर पिता से "रक्षा करो—रक्षा करो" कहते हुए सारा वृत्तान्त कह डाला। यम ने अपने वृत्तान्त में कहा कि माता को सभी बच्चों को समभाव से देखना चाहिए और सबके साथ समान व्यवहार करना चाहिए पर यह माता ऐसा नहीं करती। इसी कारण मैंने इसे मारने के लिए पैर उठाया परन्तु मारा नहीं। इतना अपराध मेरे लड़कपन के कारण हो गया सम्भव हो मैंने यह कार्य मोहवश किया हो अतः इसे आप क्षमा करें। हे गोपते! माता के शाप से मेरा यह पैर न गिरे।

माता की विशेषता

यह वृत्तान्त सुनकर सूर्य बोले कि हे बेटा! हजारों अपराध करने पर भी माता कभी भी अपने पुत्र को शाप नहीं देती। अतएव इसमें कोई विशेष कारण अवश्य होगा जिससे उसने तुम्हारे समान धर्मज्ञता, सत्यवादी को क्रोध में आकर शाप दे दिया है, माता द्वारा दिये गये शाप को कोई दूसरा अन्यथा (दूर) नहीं कर सकता। तुम्हारे इस पाँव का माँस लेकर कीड़े भूतल (पृथ्वी) पर जावेंगे इसी प्रकार तुम्हारे माता द्वारा दिया गया शाप चरितार्थ होगा और तुम भी सुरक्षित रहोगे।

इस भाँति पुत्र को सान्त्वना देकर सूर्य अपने अन्तःपुर में चले गये। पत्नि को बिलम्ब से वह देर तक देखने के बाद उससे कहा कि 'हे भामिनी! लड़के तो सभी समान हैं फिर तुम इन छोटे सावर्णी आदि पर अधिक स्नेह क्यों करती हो?

सत्य के कारण शाप नहीं

सूर्य के ऐसा पूछने पर छाया ने कोई उत्तर नहीं दिया तब ध्यान कर सूर्य ने सारे रहस्य को समझ लिया। जब सूर्य उसे शाप

देने को उद्यत हुए तब छाया ने उनसे सब सत्य वृत्तान्त कह डाला भगवान सत्य कथन से सन्तुष्ट हुए। सभी बातें सत्य कहने के कारण भगवान सूर्य ने छाया को शाप नहीं दिया और क्रोधित होकर वह विश्वकर्मा के पास गये।

विश्वकर्मा ने क्रोध से भस्म करने की इच्छा रखने वाले, तीक्ष्ण और तेजस्वी सूर्य को सर्वप्रथम सान्त्वना दी और सहर्ष उनका पूजन किया। सूर्य के अभिप्राय को समझकर उनसे कहा कि हे रवे! संज्ञा आपके अत्यन्त तेज से डर कर उत्तर कुरु में जाकर बड़वा रूप धर कर शाद्वल (घास) के वन में चर रही है। तेज और नियम के प्रभाव से सभी प्राणियों के द्वारा अधृष्या आर्यचारिणी (आर्य धर्म का आचरण करने वाली) अपनी पत्नी को आज आप देखेंगे।

विश्वकर्मा ने सूर्य की आज्ञा पाकर उनके कथनानुसार उन्हें अत्यन्त सुन्दर बना दिया। तत्पश्चात श्वशुर से आज्ञा लेकर सूर्य ने झट-पट उत्तर कुरु देश में पहुँचकर बड़ी तपस्या का आचरण करती हुई, साक्षात तपोरूपा लक्ष्मी, बड़वानल के समान तेजस्विनी, वड़वारूपिणी अपनी स्त्री को सूखे घास खाते देखा।

सूर्य ने अश्वरूपिणी विश्वकर्मा की उस पुत्री को भी निरपराधिनी समझकर स्वयं भी अश्वरूप धारण कर उसके साथ समागम किया। इतना होते ही अश्विनीरूपा संज्ञा चारों ओर से त्वरायुक्त (काँपती हुई) परपुरुष के होने के भय से सूर्य के वीर्य को नासिका छिद्र की ओर से उसने बाहर निकाल दिया। उसी से देवताओं के वैद्यवर दोनों अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए।

इसके पश्चात् जब सूर्य अपने स्वरूप (असलीरूप) में प्रगट हुए तब वह पतिव्रता संज्ञा भी हृदय के सन्तापको हरण करने वाले आनन्द देने वाले, सुन्दर रूप धारी अपने पतिको देख अत्यन्त सन्तुष्ट हुई, तथा बड़ी आनन्दित हुई।

तपस्या की महत्ता

सत्य है कि तपस्या से सभी दुर्लभता उपलब्ध हो जाती है। तपस्या ही परम मंगल है और तपस्या ही उत्तम धन है। तपस्याको ही देवता होने का मुख्य कारण माना गया है।

विष्णुदूतों ने आगे कहा कि हे शिवशर्मन ! आकाश में उपर और नीचे जो यह अति दीप्तिमय ज्योतिष चक्र का स्वरूप देख रहे हो इसे तपस्या के ही प्रभावका बड़ा तेज समझो।

इस प्रकार सवर्णा छाया के गर्भ से सूर्य के पुत्र शनैश्चर उत्पन्न हुए हैं। सर्व देववन्दित शनैश्चर ने वाराणसी पुरी में जाकर शिव लिंग की प्रतिष्ठाकर घोर तपस्याकर महादेव का अर्चन किया। महादेव के प्रसाद से शनैश्चर इस उच्च लोक तथा ग्रह पदको प्राप्त हुए हैं। काशी में सुशोभन शनैश्चरेश्वर लिंग के दर्शन और शनिवार को उस लिंग के पूजन करने से शनैश्चर (ग्रह) की पीड़ा नहीं होती।

विश्वेश्वर के दक्षिण और शुक्रेश्वर के उत्तर भाग में शनैश्चरेश्वर लिंग की पूजा करने से मनुष्य इस शनि लोक में आनन्द लाभ करता है। काशी में निवास करते हुए जो कोई इस पुण्यमय कथाको सुनेगा, उसे न तो ग्रह जनित पीड़ा होगी और न ही उसे उपसर्गों का भय होगा।

इस प्रकार स्कन्द पुराणान्तर्गत चतुर्थ काशी खण्ड पूर्वार्द्ध में वर्णित मंगल, बृहस्पति और शनि की उत्पत्ति और उनके लोकों के वर्णन नामक १७ वें अध्याय की कथा का भाषा में अनुवाद किया गया।



अध्याय १८

सप्तर्षि लोक

अगस्त्य ऋषि ने अपनी पत्नी को समझाते हुए कहा कि मुक्ति पुरी में सुस्नात, हरिद्वार में प्राण त्यागने वाले मथुरा निवासी शिवशर्मा विष्णुपुरी के दर्शन करने के प्रभाव से विष्णु लोक जाते हुए उत्तम कथाको सुनते सप्तर्षि मण्डलको देखने लगे।

चारण और मागध गण शिवशर्मा की बड़ाई करने लगे। देव कन्यायें उन्हें सम्बोधित करते हुए कहने लगीं कि "इस स्थान पर क्षण भर के लिए ठहर तो जाइये।" वे सब ऊँची सांस लेते हुए आगे कहने लगीं कि 'देखो हम सब कितनी मन्द भागा हैं, यह बड़े ही पुण्य के भागी नर हैं जो परम पवित्र लोक में जा रहे हैं।"

विमान पर विराजमान शिवशर्मा ने देव कन्याओं की बातें सुन कर विष्णु पारिषदों से पूछने लगे कि हे देव! यह तेजोमय, अनुपम और शुभ लोक किसका है?

शिवशर्मा ब्राह्मण के वचन सुनकर गणों ने कहा कि हे शिव शर्मन! विधाता द्वारा नियुक्त सप्तर्षि लोग प्रजाओं की सृष्टि के हेतु सदा इस स्थान पर वास करते हैं। ये सप्तर्षि हैं :—

मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, ऋतु, अंगिरा और वसिष्ठ। ये सातो महाभाग ब्रह्मा जी के मानस पुत्र हैं। इन्हे पुराण में सप्त-ब्रह्म भी कहा गया है।

कथानुसार इनकी पत्नियों के नाम इस प्रकार हैं :—संभूति, अनसूया, क्षमा, प्रीति, सन्नति, स्मृति और अरुन्धती। इन्हीं सातोंको

लोक माता भी कहा जाता है। इन्हीं सप्तर्षियों के तपोबल से त्रिभुवन की रक्षा होती है।

ब्रह्माका मानस पुत्रों को निर्देश

पूर्व काल में ब्रह्मा ने इन लोगोंको उत्पन्न कर इनसे कहा कि 'हे पुत्रो! प्रयत्न पूर्वक नाना रूप से प्रजाओं की सृष्टि करो।' इसके पश्चात् तपस्या में रत सप्तर्षि गण ब्रह्मा जी को प्रणाम कर सब जन्तुओं को मुक्ति देने वाले शिव के निवास स्थान अविमुक्त क्षेत्र में पहुँचे।

सातों ऋषि अपने-अपने नाम से शिव लिंग की स्थापना कर के शिव के प्रति प्रगाढ भक्ति योग से उग्र तपस्या करने लगे। भगवान् शिव ने उनकी उग्र तपस्या से प्रसन्न होकर सातोंको प्रजापति पद पर सुशोभित किया।

अत्रीश्वर

अत्रीश्वर आदि लिंगों के दर्शन करने से इस प्रजापति लोक में उज्ज्वलयश सम्पन्न हो जीव को निवास मिलता है। गोकर्णेश्वर सरोवर के पश्चिम तीर पर अत्रीश्वर लिंग का दर्शन करने से ब्रह्म तेज की वृद्धि होती है।

मरीचीश्वर

कर्कोट वापी के ईशान कोण पर मरीचि का उत्तम कुण्ड है। मनुष्य इस कुण्ड में भक्ति पूर्वक स्नान करके सूर्य के समान दीप्तिमान होता है। और उसी स्थान पर मरीचीश्वर नामक लिंग प्रतिष्ठित है।

हे ब्राह्मण! शिवशर्मन! उस लिंग के दर्शन से मरीचि लोक में मनुष्य निवास करता है और इस प्रकार वह मनुष्य मरीचिमाली (सूर्य) के समान कान्तिपूर्ण हो जाता है।

पुलहेश्वर व पुलस्त्येश्वर

पुलहेश्वर और पुलस्त्येश्वर दोनों लिङ्ग काशी में स्वर्गद्वार के पश्चिम ओर स्थित हैं। मनुष्य इनके दर्शन कर प्रजापति लोक में सम्मानित होकर वास करता है।

आङ्गिरसेश्वर

हे ब्राह्मण ! सुन्दर हरिकेष वन में स्थित आङ्गिरसेश्वर लिङ्ग का दर्शन करने वाला मनुष्य तेजोमय होकर इस लोक में वास करता है।

वशिष्ठेश्वर और क्रत्वीश्वर

वरणा नदी के रमणीय तट पर स्थित वशिष्ठेश्वर एवं क्रत्वीश्वर का दर्शन करने पर भी मनुष्य को इस प्रजापति लोक में निवास मिलता है।

मनोकामना पूर्ण करने वाले

यदि कोई मनुष्य अपने कल्याण की अभिलाषा से इन लिङ्गों का दर्शन करता है तो देव उसकी मनोकामना पूर्ण कर देते हैं।

वशिष्ठ पत्नी अरुन्धती

विष्णु दूतों ने आगे कहा कि हे शिवशर्मन ! यहाँ पर वह महापुण्यवती पतिव्रत परायणा सुन्दरी अरुन्धती निवास करती हैं। जिसके स्मरण मात्र से गंगा में स्नान करने का फल मिलता है और अन्तःपुरचारी दो तीन पवित्र व्यक्तियों के साथ विभुनारायण देव पातिव्रत्यधर्म से परम सन्तुष्ट हो सदैव जिसकी चर्चा (कथा) प्रसन्नता पूर्वक लक्ष्मी के समक्ष किया करते हैं कि 'हे कमले ! पतिव्रताओं के मध्य में अरुन्धती' का जैसा निर्मल आशय है

उतना हे भामिनी ! किसी अन्य रमणी का वैसा शुद्ध अन्त:करण कहीं भी नहीं है ।

नारायण आगे कहते हैं कि अरुन्धती जैसा रूप, शील, कौलीन्य (कुलीनता), कलाओं में कुशलता, पति-शुश्रूशापन, माधुर्य, गाम्भीर्य और गुरुजनों का परितोषण उनमें है हे प्रिये ! किसी अन्य स्त्री में नहीं मिलता । जो स्त्रियाँ बात-चीत में अरुन्धती का नाम लेती हैं तो उन्हें संसार में शुद्ध-बुद्धि और सौभाग्यशालिनी ही हुआ समझना । वे रमणियाँ धन्य हैं जो अरुन्धती का नाम स्मरण करती हैं ।

मेरे गृह में भी जब कभी पतिव्रताओं का प्रसङ्ग उठता है तो यही सती अरुन्धती सवसे प्रथम रेखा को अलंकृत करती हैं । इस प्रकार से प्रसन्नता पूर्वक कथनोपकथन करते हुए दोनों वैष्णवगण आकल्प सत्यमय ध्रुव लोक के समीप पहुँच गये ।

इस प्रकार स्कन्दपुराण के चतुर्थ काशी खण्ड के पूर्वार्द्ध में वर्णित पुनीत सप्तर्षि लोक वर्णन नामक १८ वें अध्याय की कथा का भाषा में अनुवाद किया गया ।

[आगे की कथा का वर्णन अगली पुस्तक में ।]

ईशानेश्वर

ईशानदेव द्वारा स्थापित शिव लिंग आज भी काशी में ईशानेश्वर नाम से मकान सं० चौक ३७।४२ में स्थित है।

यह मन्दिर बाँसफाटक स्थित दीपक सिनेमा के पूर्व ओर सड़क से उत्तर दिशा को जाने वाली गली में बाँए हांथ पड़ता है। इसके मुख्य द्वार के सामने भी एक गली पूर्व ओर होकर सीधे सड़क पर निकलती है उसके ही बाँए ओर फूलकटरा व सत्यनारायण मन्दिर की ओर जाया जाता है। ईशानेश्वर के पूर्व-उत्तर में लगभग २०० फीट दूरी पर आदि विश्वनाथ मन्दिर है।

मन्दिर के मुख्यद्वार के दाहिनी ओर बीच दीवाल में एक पत्थर लगा है जिसपर 'काशी खण्डोक्त ईशानेश्वर का नाम अंकित हैं। मुख्य द्वार से भीतर घुसते ही दाहिनी ओर एक कूप है जिसे सम्भवतः ईशानकूप कहा जाता है और द्वार से बायीं ओर १० पग चलने पर एक कोठरी के बगल में भगवान् ईशानेश्वर का चार स्तम्भों पर स्थित गर्भ-गृह हैं। इस गर्भ-गृह को पाटकर ऊपर सपाट छत बना दी गयी है।

इस गर्भ गृह के बीच में भगवान ईशानेश्वर का लगभग दो फीट ऊँचा तथा डेढ़ फीट गोलाकार जीर्ण लिङ्ग है। शिवलिङ्ग को देखने से लगता है कि बीच का भाग कुछ सकरा-सा है। इसका कारण ज्ञात नहीं हो सका। मूर्त्ति तथा अर्घा क्षीण दशा को प्राप्त हो चुके हैं।

इस मन्दिर व मकान के मालिक श्री प्रहलाद दास जी शापुरी हैं।

आपही का दीपक सिनेमा भी है। आप काशी के प्रसिद्ध श्रीमन्तों में से एक हैं। आपके द्वारा नियुक्त पुजारी नित्य पूजा करते हैं।

चन्द्रेश्वर

चन्द्रदेव के उपासना की भूमि काशी में सिद्धेश्वरी महाल में मकान सं० चौक ७।१२४ में है। इस मन्दिर को सिद्धयोगेश्वरी (सिद्धेश्वरी) और चन्द्रेश्वर का मन्दिर भी कहा जाता है।

मन्दिर के भीतर दक्षिण मुख होकर जाया जाता है। द्वार में घुसते ही दाहिनी ओर भगवान् सत्यनारायण की मूर्ति एक छोटे से मन्दिर में है। आगे बढ़ने पर आंगन के बीच में चन्द्रकूप है जिसमें ६ मास के भीतर मरने वाले को अपना प्रतिविम्ब नहीं दिखाई देता। इस कूप के पश्चिम एक दालान है और दालान के अग्निकोण कोने में कलिकालेश्वर (कलियुगेश्वर)' महादेव हैं तथा दालान के उत्तर ओर के कक्ष में भगवान 'चन्द्रेश्वर' का लिंग सुशोभित है। यह लिंग ताम्रपत्र से मण्डित बीच में है।

चन्द्रकूप के दक्षिण ओर दूसरे आंगन में जाने पर पश्चिम ओर दक्षिणी कोण (नैऋ त्यकोण) में भगवती सिद्धयोगेश्वरी देवी विराजमान हैं।

चन्द्रेश्वर मन्दिर के पूर्व ओर १०० फुट के लगभग दूरी पर श्री संकठा देवी का विशाल मन्दिर है और इस मन्दिर के उत्तर ओर सीढ़ी चढ़कर भारत विख्यात महाभारत वक्ता पं० रमानाथ जी व्यास द्वारा स्थापित भगवती श्री वगलामुखी पीताम्बरा देवी का मन्दिर है। इस मन्दिर में देवी भागवत, सप्तशती के आख्यानों के आधार पर बने सुन्दर चित्रों का विशाल एवं अद्वितीय संग्रह है।

श्री संकठा देवी के मन्दिर के पूर्वोत्तर कोण (ईशान) कोण में श्री कृष्ण की योगमाया भगवती विन्ध्यवासिनी देवी का मन्दिर है। श्री पीताम्बरा देवी के मन्दिर के दक्षिणी गली से जाने पर गंगा तट से पहले दाहिनी ओर गुरु बृहस्पति जी का तथा बायीं ओर श्री आत्मवीरेश्वर जी का मन्दिर है।

श्री आत्मवीरेश्वर मन्दिर के भीतर घुसने पर आँगन के उत्तर ओर भगवान् श्री आत्मवीरेश्वर का कक्ष है तथा पूर्व के दालान में अंगारेश्वर (मंगलेश्वर) दक्षिणी ओर ओर बुधेश्वर का पवित्र लिङ्ग विराजमान है।

आत्मवीरेश्वर लिङ्ग के नैऋत्य कोण में नवदुर्गा यात्रान्तर्गत छठें दिन की कात्यायिनी देवी विराजमान हैं इनके और आत्मवीरेश्वर के बीच में वीरभद्रेश्वर की मूर्ति है वीरेश्वर कक्ष के पूर्व द्वार के दाहिनी ओर विरविनायक विराजमान है और मन्दिर के मुख्यद्वार के बायीं ओर एक आले में वीरमाधव, राहु और केतु स्थित हैं।

श्री नक्षत्रेश्वर

पवित्र वरना संगम पर श्रीगंगाजी की ओर आदिकेशव घाट पर से मन्दिर के लिए ऊपर चढ़ते हुए बाये हाथ पहले काशीखण्ड अध्याय ६१ के श्वेतद्वीपेश्वर' का मन्दिर एवं लिंग है। उसके थोड़ा और ऊपर चढ़ने पर आदिकेशव मन्दिर के मुख्य द्वार (जिस पर संगमरमर के पत्थर पर लिखा है 'पंचक्रोशी ६३' आदिकेशव') के बायीं ओर गंगा की ओर ही श्री नक्षत्रेश्वर का मन्दिर है जिसमें छोटे-बड़े पाँच शिव लिंग हैं।

इनमें एक बड़ा लिंग गंगाजी की ओर दक्षिण में अकेले हैं यह वेदेश्वर हैं। भगवान् वेदेश्वर का वर्णन काशीखण्ड के अध्याय ६७ के श्लोक १४ में मिलता है कि यह वेदों के फलदाता हैं।

वेदेश्वर से आगे दो लिग अगल-वगल में हैं इनमें पश्चिम ओर का वड़ा लिंग भगवान् श्री नक्षत्रेश्वर का अन्य तीन छोटे लिंगों को भक्तों ने सैकड़ों वर्ष पूर्व स्थापित किया है ऐसा वहाँ के सेवक(पुजारी भी)बताते हैं।

नक्षत्रेश्वर मन्दिर से निकलने पर बायीं ओर कुछ ऊपर भगवान् आदि केशव का मुख्य द्वार है और १० पग आगे चलने पर बायीं ओर भगवान् संगमेश्वर का मन्दिर है। यह पञ्चक्रोशी के ६४ संख्या वाले देवता हैं।

संगमेश्वर मन्दिर में से ही ऊपर जाने पर काशी खण्ड अध्याय ५८ के भगवान् आदिकेश्व की लुभावनी मूर्ति लगभग ३ या ३॥ फीट ऊँची है। आपके उत्तर ओर एक अलग कक्ष में भगवान् ज्ञानकेशव (काशीखण्ड अध्याय ६१) की मूर्ति भी लगभग उतनी ही ऊँची है। संगमेश्वर मन्दिर से नीचे वरना की ओर उतरने पर बायीं ओर घुमने पर श्री वामन केशव का छोटा पवित्र मन्दिर है। श्री वामन केशव का वर्णन काशीखण्ड के अध्याय ६२ में मिलता है। भगवान् की मूर्ति लगभग १० इञ्च ऊँची (शुद्ध वामन अर्थात् बौना रूप में) है। मूर्ति के दाहिने हाथ में नीचे लटकता हुआ कमण्डलु और ऊपर किए हुए बायें हाथ में छत्र सुशोभित है।

वरना संगम पर प्रतिवर्ष चैत्र कृष्ण १३ को वारुनी का स्नान लगता है। उस दिन संगमेश्वर के दर्शन का महात्म्य है। परन्तु जिस वर्ष चैत्र कृष्ण १३ शनिवार को पड़े और उसी दिन शतभिशा नक्षत्र तथा शुभयोग रहता है उस दिन तो महावारुनी लगता है। यह प्राय: ३०-४० वर्ष में एक वार लगता है। उस दिन वरनासंगम में स्नान करने से करोड़ सूर्य ग्रहण के स्नान का फल मिलता है।

आदिकेशव और ज्ञानकेशव के उत्तर में ५० फुट की दूरी पर काशी खण्डोक्त (अध्याय ५७) भगवान् खर्व विनायक का छोटा सा मन्दिर है। यहीं से पञ्चक्रोशी के यात्री मार्ग में यव (जव) छिड़कते हुए मणिकर्णिका तक जाते हैं।

वरनासंगम पर ही विष्णु पादोदक तीर्थ भी है जो गंगाजी में अव दिलीन हो गया है। यहीं पर भगवान विष्णु ने स्नान से पूर्व आपने पैर को धोया है। स्नान करने के पश्चात् अपने हाथों आदिकेशव की मूर्ति वनाकर उन्होंने वहाँ स्थापित किया था।

इस क्षेत्र में अनेक तीर्थ एवं देव मन्दिर हैं जिनका विस्तार से उल्लेख अन्य संवंधित भागों में किया जायेगा।

अत्रीश्वर

भगवान् अत्रिश्वर के मन्दिर के सम्वन्ध में कुछ निश्चय रूप से अभी कहना उपयुक्त न होगा। जिन स्थानों का निर्देश काशी खण्ड में किया गया है वहाँ पर यह देवना लुप्त हैं पता लगा रहा हूँ वैसे आज कल नारदघाट स्थित मकान सं० दशाश्वमेध २५।११ में स्थापित शिवलिङ्ग को अत्रीश्वर मानकर पूजन व यात्रा होती है।

वैसे काशी खण्ड में एक स्थान पर गोप्रेक्षेश्वर के समीप लिखा है तो दूसरा स्थान पर गोकर्णेश्वर के समीप। पहले स्थान गोप्रेक्षेश्वर के सम्वन्ध में भी अन्तर आ गया है। यह स्थान राजघाट किला के आस-पास होना चाहिये पर अव वहाँ कोई चिह्न नहीं मिलता। वर्तमान समय में गोप्रेक्षेश्वर का मन्दिर लालघाट पर है। लोग यहीं दर्शन व पूजन करते हैं। अतः अत्रीश्वर के स्थान का ठीक निर्णय करना कठिन हो गया है।

मरीचीश्वर

मरीचीश्वर का स्थान नाग कूँआ के पास है।

पुलहेश्वर

पुलहेश्वर का मन्दिर स्वर्ग द्वार पर पुलस्त्येश्वर के सामने मकान सं० चौक १०।१६ के चबूतरे पर स्थित है।

पुलस्त्येश्वर

पुलस्त्येश्वर का मन्दिर स्वर्ग-द्वार पर पुलहेश्वर के सामने मकान सं० चौक ३३/४३ में है। पुलस्त्येश्वर का एक लिङ्ग श्री अगस्त्येश्वर के दक्षिण में भो बताया जाता है। अधिकांश लोग स्वर्गद्वार वाले पुलस्त्येश्वर का ही दर्शन यात्रा करते हैं।

आंगिरसेश्वर

आंगिरसेश्वर का बड़ा लिङ्ग जगंमवाड़ी क्षेत्र में श्री हरिकेशेश्वर के ऊत्तर ओर दालान में पूर्व ओर स्थित है। इनके उत्तर में काशी के बारहों सूर्य में से एक 'विमलादित्य' मकान सं० दशाश्वमेध ३५।२७३ में हैं। भगवान् सूर्य की मूर्ति लगभग दो फीट उचे वेदो पर लेटी हुई है।

आंगिरसेश्वर जिन्हें कश्यपेश्वर नाम से भो जाना जाता है बड़ी दुर्दशा-ग्रस्त दशा में पड़े हैं। इतना ही नहीं उनके दक्षिण में स्थित हरिकेशेश्वर के मण्डप की भी ठीक वैसी ही दशा है।

इस स्थान पर जाने के दो मार्ग हैं एक तो रामापुरा वाले मार्ग पर स्थित खारीकुआँ के पूर्व ओर गली में मुड़ने पर पहली बायीं ओर गली में घूमने पर दाहिने हाथ पड़ता है। दूसरा मार्ग गोदौलिया से जगंमवाड़ी जाते समय मठ से पहले ही पश्चिम ओर खारीकुआँ जाते समय मार्ग से भी जाया जाता है।

हरिकेशेश्वर मन्दिर के दक्षिण, गली के सामने काशी के प्रसिद्ध वल्लभ-सम्प्रदाय के विद्वान एवं कथा वाचक तथा हमारे काशी खण्ड के प्रथम भाग के सम्पादक मण्डल के एक प्रमुख सदस्य पं० माधव शास्त्री का निवास स्थान है और मन्दिर के ठीक पश्चिम ओर काशी के प्रसिद्ध कजली गायक श्री माठूराम का निवास स्थान है।

खारी कुआँ से सटे एक शिव मन्दिर है तथा कुआँ के पश्चिम रामापुरा वाले सड़क के किनारे वनकटी के समय का एक विशाल समी का वृक्ष है। इस वृक्ष की पूजा तथा शृङ्गार भक्त लोग विजय दशमी के दिन करते हैं। वृक्ष के आगे हनुमान जी की एक मूर्ति स्थापित है।

हरिकेशेश्वर के स्थान की दशा देख कर हृदय द्रवित हो उठा। वहाँ मूर्तियों को मन्दिर से निकाल कर किस उद्देश्य से कश्यपेश्वर के पूर्व ओर स्थापित किया गया है पता नहीं। मालुम होता है कि उन दोनों मन्दिरों को कमरे के रूप में परिणत किया जाने वाला है या क्या रहस्य है नहीं खुल सका।

वशिष्ठेश्वर

संकठा देवी के मन्दिर के दक्षिण ओर मकान सं० चौक ७।१६१ में वसिष्ठेश्वर का मन्दिर है। इनके बगल में ही वामदेवेश्वर भी हैं। काशी खण्ड में वशिष्ठेश्वर का स्थान वरना तट पर इंगित है पर वह कहाँ हैं पता नहीं चल सका है। वर्तमान समय संकटा देवी के पास ही यात्री दर्शन करते हैं।

क्रतीश्वर

गौतमेश्वर को ही क्रतीश्वर भी कहते हैं यह स्थान महाराज काशी नरेश के शिवाला, (गोदौलिया) दशाश्वमेध ३७/३३में स्थित है।

वृहस्पतेश्वर

देवगुरु वृहस्पति जी ने काशी में शिवलिङ्ग स्थापित कर जिस स्थान पर तपश्चर्या की थी वह स्थान श्री आत्मवीरेश्वर के निकट पश्चिम ओर तथा चन्द्रेश्वर से लगभग ५०-६० फुट पूर्व में मन्दिर मकान सं० चौक ७/१३३ में स्थित है।

देवगुरु वृहस्पति जी के मन्दिर के दक्षिण-पश्चिम ओर मेघाभगत का स्थान है जहाँ पर काशी के प्रसिद्ध नाटी इमली के भरतमिलाप वाले अर्थात् चित्रकूट रामलीला की पाँचों मूर्तियाँ प्रतिवर्ष भरतमिलाप के दूसरे दिन आश्विनशुक्ल द्वादशी को पधारती हैं। उस समय भक्तजन भारी संख्या में वहाँ उपस्थित होकर भगवान् की झाँकी तथा मेघाभगत के उपास्य देव व धनुष-वाण व खड़ांऊ का भी दर्शन करते हैं।

प्रति वृहस्पतिवार को गुरु वृहस्पति का दर्शन व पूजन करने भारी संख्या में आज भी दर्शनार्थी आते हैं और पीला फूल, हल्दी, वेसन का लड्डू, चने की धोयी दाल विशेषरूप से चढ़ा कर अपने अरिष्ट के निवारणार्थ भगवान् वृहस्पतेश्वर की आराधना करते हैं।

यहाँ के पुजारीगण पं० भैरवनाथ जी आदि बड़ी तन्मयता के साथ भगवान् की सेवा-पूजा करते हैं।

वृहस्पतेश्वर के पश्चिम शिवभक्त श्री देवी सहाय जी का स्थान है।

शुक्रेश्वर

शुक्रेश्वर भगवान् कालिका गली में स्थित मकान सं० दशाश्वमेध ८।३० में स्थित हैं। भगवान् के मन्दिर के आगे ही शुक्रकूप है। विशेष विवरण हमारे श्री काशीखण्ड के चतुर्थ भाग अध्याय ११ से १३ के पृष्ठ सं० ६३ पर उल्लिखित है।

शनैश्चेश्वर

प्रसिद्ध विश्वनाथ मन्दिर के मुख्यद्वार से भीतर घुसने पर बाये हाथ घूमने

पर श्री वैकुण्ठेश्वर कक्ष के नैऋत्य कोण में फेरी करते समय मार्ग में नीचे पीतल वाली जलहरी के घेरे में हैं।

काशी

मनोनिवृत्तिः परमोपशान्तिः सा तीर्थवर्य्या मणिकर्णिका वै।
ज्ञानप्रवाहा विमला ही गंगा सा काशीकाऽहं निजबोध रूपः ।।

काशी भगवान् विश्वनाथ की राजधानी कही गयी है। इसे अविमुक्त, अपुनर्भव भूमि, रुद्रवास, महाश्मशान, वाराणसी, आनन्दवन, शिवपुरी, तीर्थराजी, वनस्थली भी कहा जाता है। बाबा विश्वनाथ के सान्निध्य में जहाँ एक ओर भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनियों का जमघट पापी जीव को दण्ड देने के लिये तथा उत्तम जीव को अपने भय से मुक्त करने के लिए है वहीं पर विभिन्न देवी-देवता, यक्ष, गन्धर्व, तीर्थ, सन्त, महात्मा, योगी, साधक जीव को मुक्ति का मार्ग पद-पद पर दर्शाने के लिये भी सदा उन्नत रहते हैं।

भगवान् की राजधानी काशी में उक्त बातों का प्रतिपादन करने के लिए पृथ्वी के भू-देव अर्थात् ब्राह्मण लोग भी सदा सचेष्ट रहते हैं। जब तक काशीवासी या काशी के बाहर के लोग काशी के ब्राह्मणों के समक्ष उपस्थित होकर अपने ज्ञान को प्रमाणित नहीं करा लिये तब तक उन्हें संसार में किसी ने नहीं जाना चाहे वह गौतम बुद्ध रहे हों, शंकराचार्य हों, वल्लभाचार्य अथवा दयानन्द जीव यों न रहे हों। अनेक पन्थों के प्रमुख उपासक, महात्मा कीनाराम, तैलंग स्वामी अथवा तुलसीदास ही क्यों न रहे हों। सबको काशी में शान्ति की अनुभूति हुई है क्यों ? और कैसे ?

काशी में सदा से वेद और उसके व्याख्याता शास्त्र का उच्चकोटि का अध्ययन होता रहा फलतः धर्म और संस्कृति यहीं फलती-फूलती रही। इसके पठन-पाठन में भू-देव (ब्राह्मण) लोग तन-मन से लगे रहते थे। उन्हें धन की न तो चिन्ता थी और न लालसा। वह सदा यही कहा करते थे कि

हमारा धन तो हमारी विद्या है। जिसे विद्या की आवश्यकता होगी वही हमसे ही ले सकता है क्योंकि संसार की विद्या को विद्या प्रमाणित करने वाले हम ही हैं अतः वह विद्या की ओर अधिक ध्यान देते रहे। इस भांति ब्राह्मण के प्रति लोगों की अगाध श्रद्धा थी।

काशी में अर्थात् भगवान् विश्वनाथ, के आनन्द वन में सदा आनन्द ही रहा करता था और आज भी जो उस विद्या के उपासक हैं उन्हें उपलब्ध है। काशी में जहाँ एक ओर देवी-देवताओं और तीर्थों का महात्म्य है वहीं पर ब्राह्मणों का महात्म्य कुछ कम नहीं है।

काशी सदा से विद्यापीठ रही है। यहाँ के वेद विद्या की धारा आज लुप्त प्राय हो गयी है। यहाँ विद्या के स्थान पर अविद्या नृत्य कर रही है। परिणामतः देवी-देवताओं का भी अपमान व अवज्ञा का होना स्वभाविक है। आज सभी लक्ष्यभ्रष्ट दिखाई देते हैं। अत्यन्त खेद के साथ यह अनुभव हो रहा है कि काशी का वह प्राचीन ज्ञान-विज्ञान नष्ट हो रहा है।

काशी की प्राचीन विलक्षणता, ज्ञान-विज्ञान और प्रतिभा की झलक लेने लोग यहाँ आते हैं पर यहाँ का बदला दृश्य देखकर वह यही कहते सुने जाते हैं कि यहाँ की प्राचीनता नष्ट हो गयी है क्या देखा जाय ?

काशी के प्राचीन वैभव को पुनः जागृत करने की परम आवश्यकता है। काशी में वेद-विद्या के उपासक अपने विद्याध्ययन, मे उस प्रकार लगें जिससे जनता स्वयं उनके आदर की ओर आकृष्ट हो। उनकी समस्त आवश्यकता की पूर्ति वह स्वयं प्रेरित होकर करे। वेद और शास्त्र का अध्ययन फीस देकर नहीं अपितु गुरुओं के चरणों में बैठकर उनके प्रति श्रद्धा व्यक्त करने और उनकी सेवा करने से तथा उनकी कृपा दृष्टि से ही अर्जित किया जा सकता है। गुरुओं पर शासन करके, उनका घेराव करके अथवा उनकी अवज्ञा करके विद्या नहीं प्राप्त की जा सकती।

इस विद्या का बीजारोपण परम पवित्र, शुद्ध एवं परिमार्जित भूमि अर्थात् प्राकृतिक वातावरण के किसी आश्रम में रहने वाले मृगछवनों के समान ५ वर्ष के अवस्था वाले ब्रह्मचारी-ब्राह्मण बालकों में अंकुरित किया जा सकता है। काशी की प्राचीन विद्या के गौरव-गरिमा को पुनरुज्जीवित करने के लिए हमें सर्वप्रथम ध्यान देना होगा तभी भगवान् विश्वनाथ की राजधानी सुरक्षित रह सकेगी और यहाँ वास करने वाले जीवों को शान्ति एवं मुक्ति मार्ग मिलेगा। विद्या के ज्ञान से ही हम उन देवी देवताओं से साक्षात्कार कर सकते हैं, महात्माओं के समान आचरण कर समस्त विद्याओं के अर्थ को प्रतिपादित करने में भी हम समर्थ हो सकते हैं।

काशी को काशी बनाने के लिए ऋषि-आश्रम के प्राचीन परिपाटी को पुनः चलाना होगा तभी काशी की गलियों में वेद-ध्वनि, शास्त्रीय चर्चा, धर्मपरायणता आ सकती है। प्राचीन काशी की धरोहर जो आज असुरक्षित होकर लुट रही है वह बच सकेगी। इस प्रकार काशीवासी काशी में विद्या का स्थापन कर अविद्या का यहाँ से उन्मूलन कर सकते हैं। अतः हम सबको काशी में विद्याव्रती होकर विद्या का सर्वविध रक्षण करना अपेक्षित है।

इस क्षेत्र में हम काशिराज के अत्यन्त आभारी हैं कि उन्होंने विद्या देवता की उपासना में तन (स्वयं) मन (पुत्र) और धन से उद्यत होकर दूसरों को भी प्रत्येक प्रकार की सहायता देकर प्रेरित एवं उत्साहित कर रहे हैं।

काशिराज महाराजा दिवोदास की परम्परा का निर्वाह वर्तमान काशी नरेश महाराजा श्री विभूतिनारायण सिंह जी अपने दुर्ग में 'विद्या मन्दिर' की स्थापना कर अपने एकमेव पुत्र महाराजकुमार ब्रह्मचारी श्रीअनन्त नारायण सिंह जी को ब्रह्मचारी वेश में रखकर अन्य सहपाठी ब्रह्मचारियों के साथ समानभाव में वेद व शास्त्र का अध्ययन करा रहे हैं साथ ही स्वयं भी अध्ययन कर रहे हैं। इस कार्य से काशी नरेश महाराजा श्री विभूतिनारायण

सिंह जी भगवान् विश्वनाथ के प्रतीक रूप में हम सबको प्रेरणा दे रहे हैं। ठीक ही कहा गया है कि 'यच्छीलोराजा तच्छीला: प्रजा भवन्ति प्रकृतयो भवन्ति'।

काशी को काशी बनाने का एक ही मार्ग समझ में आता है कि यहाँ वेद-शास्त्रों का अध्ययन, पुराण श्रवण, और देव कर्म की प्रधानता को व्यापक रूप प्रदान करना चाहिये।

त्रैलोक्य से न्यारी काशी को पुनरुज्जीवित कर उसके आदर्श को त्रैलोक्य से न्यारी बनाना ही आज हमारा धर्म है। काशी के प्राचीन वैभव, गौरव व गरिमा की स्थापना उसके ज्ञान होनेपर ही सम्भव है। अत: हमें 'काशी खण्ड' के आख्यानों पर आस्था रख कर उसका मनन करना होगा।

यहाँ सदा सर्वदा 'हर-हर महादेवशम्भो काशीविश्वनाथ गगे' के उद्घोष के साथ वेद-ध्वनि, वैदिक यज्ञों का आयोजन तथा पूजा-पाठ की शृंखला बनाये रखना होगा तभी काशी का स्वरूप दर्शनीय बनेगा और हम भी मनुष्य बनकर काशी में रहकर मोक्ष के भागी बनेंगे और भविष्य के लिये इस प्रकार हम सत् मार्ग प्रदर्शन कर सकेंगे।

चन्द्रलोक की यात्रा करते समय पं० शिवशर्मा जी को विष्णु दूतों ने जो कुछ बताया उसे हमने १४ वें अध्याय में पढ़ा। साथ ही आज के युग में एक महान आश्चर्यजनक घटना घट गयी है जिसके कारण भारतीय जन मानस में कुछ भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो गयी है। जिनके सम्बन्ध में मैं यहाँ कुछ स्पष्टीकरण करना अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ।

आज से चार मास पूर्व १६ जुलाई १९६९ को अमेरिका देश के तीन साहसिक व्यक्ति कोलिन्स, नीलआर्मस्ट्रांग और एडविन एल्ड्रिन अन्तरिक्षयान द्वारा चन्द्रकक्षा में प्रवेश किये जिनमें से अन्तिम दो व्यक्ति मुख्ययान से अलग हो दूसरे यान द्वारा चन्द्रमा पर उतरे और ढाई घण्टा विचरण कर वहाँ की मिट्टी, रंग-बिरंगे शिलाखण्ड को लेकर पुन: मुख्य यान से जा मिले जहाँ उनका साथी कोलिन्स बैठा था। और पुन: वे तीनो पृथ्वी पर सकुशल २४ जुलाई को लौट आये।

इस घटना में लोगों के चिन्तन शक्ति को झकझोर दिया। जिसे जो सूझा उसने वही कहा और किया। किसी ने सृष्टि की रचना के वाद इसे चन्द्रमा पर प्रथम मानव के विजय की संज्ञा दी तो किसी ने हमारे भारतीय ऋषि महर्षियों द्वारा प्रतिपादित विश्वासों पर जमकर प्रहार किया और यहाँ तक हुआ कि काश्मीर के एक वैज्ञानिक ने अपने यहाँ की पूजा के समय नवग्रह पूजन में से चन्द्रमा को निकाल कर मात्र आठग्रह का ही पूजन सम्पन्न की गयी।

आज का युग प्रचार का है। इसमें सन्देह नहीं कि अमेरिका ने अपने प्रचार वल से हम आध्यात्मिक भारतीयों को चकाचौंध कर दिया और सब उसी ओर वह चले। कुछ भारतीय लोगों की यहाँ तक धारणा वनती गयी कि पुराणों में वर्णित चन्द्रलोक की कथा एकदम निर्मूल है।

इस अवसर पर भारत के विख्यात मनिषि पण्डितराज श्रीराजेश्वर शास्त्री द्राविड़ ने अपने शास्त्रीय पक्ष को रखते हुए बड़े ही तार्किक दृष्टि से आधुनिक प्रचार धारा को शास्त्र के मार्मिक रहस्य को प्रगट कर कहते हुए योगसूत्र के आधार पर वताया कि अमेरिकी यात्री चन्द्रबिम्ब पर गये जो ज्योतिषियों का विष्णुधर्मोत्तर पुराणोक्त ग्रहण का चन्द्रमा है।

पण्डित राज ने वताया कि दक्ष प्रजापति के शापवश क्षत होकर अमावस्या के दिन प्रातः चन्द्र वनस्पतियों में निवास करता है। इन बनस्पतियों को गायें चरती हैं, इस प्रकार से उनके दूध व दधि से हवन होता है। इस भाँति चन्द्रतत्व का संबंध शरीर से भी माना गया है।

आयुर्वेद के अनुसार मस्तक में औदर्यअग्नि द्वारा उत्पन्न वाष्प से शुद्ध जल का जो भाव व्यक्त है उसे अमृत माना गया है। मस्तक के उस अमृत-कोष से समस्त शरीर के अवयवों में अमृतरस का प्रवाह होता है फलतः सभी अंग फलते-फूलते दृष्टिगोचर होते हैं। इसके प्रवाह के जिस भाग में किसी प्रकार का यदि विघ्न उपस्थित होता है तो शरीर का वह भाग रोग ग्रस्त हो जाता है। अतः यह सिद्ध है कि मस्तक के उस जल तत्व से अमृत का स्राव होता है। जिससे शरीर की वृद्धि होती है। जल का स्राव जहाँ रुकता है वहीं से आगे का भाग कुछ दिनों तक शून्य हो जाता है उदाहरण के लिए हाथ ऊपर की ओर उठाये रहने पर हाथों में शून्यदा आ जाती है।

इसी प्रकार उस विराट पुरुष के मस्तक में वह अमृतस्रावी चन्द्र विराजमान हैं। जिस प्रकार से मनुष्य के मस्तक में जलतत्व रहता है।

उस विराट पुरुष के मस्तक के जल स्राव से सारे संसाररूपी उसके शरीर को सुख प्राप्त होता है। उसी सुख में समुद्र, वनस्पतियाँ और मनुष्य के शरीर भी उस चन्द्र के स्रावरूपी किरण के स्पर्श होते ही पुलकित हो सुख का अनुभव करते हैं। अतः वह चन्द्र मण्डल निश्चय ही सूर्य मण्डल के ऊपर होना चाहिये। ज्ञानराज दैवज्ञ के कथनानुसार जो चन्द्रमा हमें दिखाई देता है यह तो मनुष्य के मनमें विराज रहा चन्द्रमा के समान है इसीलिए तो इसे "चन्द्रमा मनसो जाता चक्षो सूर्यो अजायता" कहा गया है।

शरीर में नाभी से कण्ठ तक का भाग सूर्यखण्ड (अग्निलोक) अर्थात् अग्निगृह कहा जाता है, कण्ठ से ऊपर मस्तक तक के भाग को कफ (चन्द्र) गृह और नाभी से नीचे भाग को वान वायु लोक कहा जाता है। इस शरीर रचना में भी हम चन्द्रलोक को मस्तक में ऊपर की ओर वाष्प जल के रूप में पाते हैं।

मस्तक से होने वाले अमृतस्राव से हमारे सारे शरीर को सुख पहुँचता है। अतः यह हर दृष्टि से सिद्ध होता है कि सूर्य से चन्द्रलोक ऊपर है।

सूर्य से नीचे का चन्द्रमा जो हमें दिखाई देता है यह ज्योतिष का चन्द्रमा है। भागवत के चन्द्रलोक को भिन्न बताया गया है। उनके अनुसार वे पुराणोक्त चन्द्रलोक सूर्यसे १ लाख योजन दूर है। अमरीकीयात्री अभी सूर्यतक तो पहुँचे ही नहीं अतः उनके भागवदादि पुराणोक्त चन्द्रलोक में जाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

म यहाँ पर काशी खण्ड में वर्णित उस 'वर्णन से हम विशेषरूप से प्रभावित हुए हैं कि चन्द्र की एक कला को भगवान् विश्वनाथ ने अपने मस्तक पर धारण किया शेष १५ कला दक्ष प्रजापति के शापवस मास के अन्त में क्षय हो जाता है और पुनः उक्त एक कला के प्रभाव से वह क्रमशः पूर्णता को प्राप्त होता है। ऐसी स्थिति में हम यह मानने को बाध्य हो रहे हैं कि

शिवजी के मस्तक पर विराजमान कला ही नित्य है जिसे सोलहवीं कला कहते हैं। आज भी हम देखते हैं कि अमरनाथ महादेव का लिङ्ग शुक्ल पक्ष में प्रतिदिन क्रमशः बढ़ते-बढ़ते पूर्णमासी को पूर्णता को प्राप्त होता है और पुनः क्षय होते-होते मासान्त अमावस्या को समाप्त हो जाता है।

हमारे यहाँ चन्द्रलोक में अमृत का पाया जाना बताया गया है। हमारे यहाँ के अनेक भारतीय पूर्वकाल में अनेक बार चन्द्रलोक में गये हैं अभी ५,००० वर्ष पूर्व महाभारत युद्ध के समय भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को लेकर चन्द्रलोक में गये थे, महर्षि नारद चन्द्रलोक तो क्या सभी लोकों में विचरण करते रहते हैं अतः हम यह कदापि मानने को तैयार नहीं हैं कि सृष्टि की रचना के पश्चात् प्रथम बार मानव चन्द्रमा पर गया यह बात भारत पर लागू नहीं होती। हम यह मानते हैं कि सृष्टि की रचना के बाद प्रथम बार अमरिकी मनुष्य अवश्य चन्द्रमा पर गये।

चन्द्रमा से लायी गयी धुली व शिला खण्डों के जाँच से जो भी तथ्य अब तक उपलब्ध हुए हैं उनसे हमारे ऋषियों द्वारा प्रतिपादित बातों की ही पुष्टि होती है अतः यह कैसे कहा जा सकता है कि हमारे पूर्व पुरुष वहाँ पहले नहीं गये थे। बिना गये सारी बातों को कहना और लिखना कैसे सम्भव हो सकता है।

संयोगवश कार्त्तिक संवत् २०२६ मास के प्रारम्भ में काशी हिन्दु विश्व विद्यालय के भूगर्भ शास्त्री विद्वान् प्राध्यापक पण्डित वन्शीधर तिवारी से मेरी भेंट हुई। आपने मेरे विचारों से सहमत होते हुए यह तथ्य स्वीकार किया कि चन्द्रमा में जैसा कि आप लोग अमृत तत्व की बाते कहते हैं वह सत्य है। आपने कहा कि अमृत शब्द का अर्थ है जो निर्जीव को अति शीघ्र जीवन प्रदान करे। आपने अपना एक लेख देते हुए मुझे बताया कि आज के अमरीकी वैज्ञानियों ने यह स्वीकार किया है कि चन्द्रमा से लायी गयी धूलिका प्रयोग पालकभाजी और कपास के बीजों को बोते समय मिट्टी में किया गया जिसके परिणामस्वरूप इनके पौधे आशा से अधिक कम समय में उग आये हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि वहाँ की मिट्टी में जीवनी शक्ति विद्यमान है।

लोकों का विवरण

पृथ्वी से अन्य लोकों के विवरण के सम्बन्ध में हमारे पाठकों ने देखा कि मायापुरी में शरीर त्यागने के पश्चात् पं० शिवशर्मा जी अपने दिव्य शरीर से भगवान विष्णु के धाम वैकुण्ठ लोक में जाते समय क्रमशः—

१–पिशाच लोक, २–गुह्य लोक, ३–गन्धर्व लोक, ४–विद्याधर लोक, ५–यम लोक, ६–अप्सरा लोक, ७–सूर्य लोक, ८–इन्द्र लोक, ९–अग्नि लोक, १०–नैर्ऋत्य लोक, ११–वरुण लोक, १२–वायु लोक, १३–कुवेर लोक, १४–ईशान लोक, १५–चन्द्र लोक, १६–नक्षत्र लोक, १७–बुध लोक, १८–शुक्र लोक, १९–अङ्गारक (मंगल) लोक, २०–वृहस्पति लोक, २१–शनि लोक, २२–सप्तर्षि लोक तक की यात्रा कर चुके हैं। अब उनका विमान ध्रुव लोक पहुँच गया है।

उपरोक्त लोकों के क्रम से भी स्पष्ट होता है कि पृथ्वी के पश्चात सातवाँ लोक सूर्य का है और १५ वाँ लोक चन्द्रलोक है अर्थात सूर्य से आठ लोक ऊपर चन्द्र लोक पड़ता है।

सूर्य से ८ लाख मील ऊपर चन्द्र लोक

श्री मद्भागवद के पञ्चमस्कन्द के २१ व २२ वें अध्याय को भी देखने से यही विदित होता है कि सूर्य रश्मि से एक लाख योजन अर्थात् ८ लाख मील ऊपर चन्द्र लोक है।

अमेरिका ने अपना दूसरा अन्तरिक्षयान अपोलो १२ भी गत १६ नवम्वर को चन्द्रमा पर भेजा है जिसमें कमाण्डर कोंनराड, चान्द्रखण्ड के चालक यात्री बीन और...............सवार है। यह आज प्रबोधनी एकादशी १९ नवम्वर को चन्द्रमा पर उतरने वाले हैं। इन यात्रियों की उपलब्धि के सम्बन्ध में हम अगले अङ्क में ही प्रकाश डाल सकेंगे।

व्रत

व्रत करके हम किसी का भला नहीं करते अपितु अपना ही भला करते हैं और साथ ही हम उन महान आत्माओं के इतिहासों का, हर व्रत में उन-उन व्रतों के इतिहासों का स्मरण कर अपने को तदनुरूप बनाने का उपक्रम करने का साधन बनाते हुए अपने मार्ग को प्रशस्त बनाते है।

भीष्म पंचक में "सत्य व्रताय शुचये गांगेयाय महात्मने भीष्मा-माय प्रददाम्यर्घ्यम् आजन्म ब्रह्मचारिणे" उच्चारण कर हम भीष्म को तीन अंजली अर्घ्य देते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि हम भीष्म का उद्धार करते हैं अपितु हम भीष्म के समस्त इतिहासों का इसी व्रत के माध्यम से स्मरण करते हैं और अपने को भीष्म जैसा सत्य व्रती एवं ब्रह्मचारी बनाने की ओर अग्रसर होते हुए अपना मार्ग सुदृढ बनावे तो हमारा भला ही होगा।

भगवान विष्णु ने वराह अवतार धारण कर पृथ्वी को ऊपर उठाया। इसका तात्पूर्य यही है कि उन्होंने उटपटाङ्ग इतिहासों के चक्कर में फसकर अपमार्ग में गिरी हुई पृथ्वी को उपर उठाकर उबारा। अर्थात् वास्तविक इतिहास का लोगों को स्मरण दिलाते हुए उन्होंने वेदों में वर्णित इतिहास का स्मरण दिलाते हुए हमें अपने कर्त्तव्य का स्मरण कराया।

अस्तु हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम अपने प्राचीन इतिहासों अर्थात पुराणों में वर्णित कथाओं का स्मरण करें. उनमें वर्णित मार्गों के अनुसार अपने को आत्म गुण सम्पत्ति से पूर्ण बनावें। यह कार्य विद्वानों के सेवा सुश्रुषा से ही सम्भव होगा।

चाहे ब्राह्मण हो, राजा हो, वैश्य हो, शूद्र हो कोई भी क्यों न हो सबको आत्मगुण सम्पत्ति से पूर्ण होना चाहिये। कार्य भीष्म पंचक व्रत के मन्त्र स्मरण करते हुए अपने सत्यव्रती वेदमार्गानुगामी बनावें इसी से सबका कल्याण होगा। भगवान ने वराह रूप में जो कार्य किया है उसका यथोचित सम्मान किया। उसका हम इस व्रत प्रसंग में स्मरण कर व्रत रूपी इतिहास का स्मरण करते हुए प्रभु के चरणों में नतमस्तक होते हैं। वह हमें सदा सत्यव्रत, आत्मगुण सम्पत्ति से पूर्ण करें यही अभिलाषा है।

—:o:—

अथ दारिद्र्यदहनस्तोत्र ।

विश्वेश्वराय नरकार्णवतारणाय कर्णामृताय शशिशेखरधारणाय ।
कर्पूरकान्तिधवलाय जटाधराय दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय ।।१।।
गौरीप्रियाय रजनीशकलाधराय कालान्तकाय भुजगाधिपकङ्कणाय ।
गङ्गाधराय गजराजविमर्दनाय दारिद्र्यदुःखदहनाय नम शिवाय ।।२।।
भक्तिप्रियाय भवरोगभयापहाय उग्राय दुर्गभवसागरतारणाय ।
ज्योतिर्मयाय गुणनामसु नृत्यकाय दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय।३।।
चर्माम्बरायशवभस्मविलेपनायभालेक्षणाथ मणिकुण्डलमण्डिताय ।
मञ्जीरपादयुगुलाय जटाधराय दारिद्र्यदुःखदहयाय नमः शिवाय ।।४।।
पञ्चाननाय फणिराजविभूषणाय हेमांशुकाय भुवनत्रयमण्डिताय ।
आनंदभूमिवरदाय तमोमयाय दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय ।।५।।
भानुप्रियाय भवसागरतारणाय कालान्तकाय कमलासनपूजिताय ।
नेत्रत्रयाय शुभलक्षणलक्षिताय दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय ।।६।।
रामप्रियाय रघुनाथवरप्रदाय नामप्रियाय नरकार्णवतारणाय ।
पुण्येषु पुण्यभरिताय सुरार्चिताय दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय।।७।।
मुक्तेश्वराय फलदाय गणेश्वराय गीतप्रियाय वृषभेश्वरवाहनाय ।
मातङ्गचर्मवसनाय महेश्वराय दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय ।।८।।
वसिष्ठेन कृतं स्तोत्रं सर्वरोगनिवारणम् ।
सर्वसम्पत्करंशीघ्रं पुत्रपौत्रादिवर्द्धनम् ।।९।।
त्रिसंध्यं यः पठेन्नित्यं स हि स्वर्गमवाप्नुयात् ।।१०।।

इति श्रीवसिष्ठविरचितं दारिद्र्यदहनस्तोत्रं सम्पूर्णं